॥ प्राक् कथन ॥

इस बात को पढे लिखे आदमी अच्छी तरह जानते हैं कि इस भारतवर्ष में अपने मत के प्रचार में दक्ष एक आर्य समाज नामका मत है। इसने अल्प समय में ही अच्छी तरक्की की है। इस आर्य समाज के प्रचारकों में एक काशी निवासी पं० जे० पी चौधरी काव्यतीर्थ भी हैं। आपकी प्रचारक दृष्टि अचानक मिथिला पर पड़ी, काशी और मिथिला में धार्मिक सम्बन्ध अधिक होने से आपको मिथिला निवासी शूद्र समाज की परिस्थिति के अध्ययन में उत्तम साधन मिला, आपको ज्ञात हुआ कि मिथिला में कुर्मी कोयरी, गोप ये सब शूद्र जातियां अधिक संख्या में हैं। साथ ही आपसे यह बात भी छिपी न रही कि मिथिलास्थित शूद्र भी शुद्ध सनातन धर्म में दृढ़ हैं। उनके सामने आर्यसमाजी बनकर जाने से काम नहीं चलेगा, अतएव आपने इस युक्ति से काम लिया कि गोपाल जाति को यादव क्षत्रिय, कुर्मी जाति को कुर्म क्षत्रिय, और कोयरीओं को कुशवाहा क्षत्रिय बनने की लालच देकर खुद आप आचार्य बनकर मिथिला में आ पहुंचे। और उन जातियों को यज्ञोपवीत संस्कार देने लगे। साथ ही एक नोटिस द्वारा मैथिल विद्वानों को ललकारा कि हम मिथिलान्तर्गत चारो पेठ में माघ शु० ५ को कोयरी भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार कराते हैं जिन्हे सन्देह हो आकर हमसे शास्त्रार्थ करें इस अनुचित आह्वान के उत्तर में वछीपुर निवासी बाबू श्री दामोदरनारायण चौधरी जी ने पं० जे० पी० चौधरीजी को लिखा कि आप अपनी प्रतिज्ञानुसार पहले शास्त्रार्थ करलें फिर शूद्र जाति को जनेऊ दें। इस प्रकार लिखा पढ़ी से शास्त्रार्थ होना तै हो चुका था, अतएव उक्त बाबू साहब अपने पक्ष के विद्वानों के साथ व वेदादि धर्मशास्त्र ग्रन्थों के साथ चारो पेठ में उपस्थित हुए तीन दिन तक शास्त्रार्थ के लिये जे० पीं० चौधरी से कहते रहे किन्तु जे० पी० चौधरी ने शास्त्रार्थ करना

स्वीकार नहीं किया। बाबू साहब ने शास्त्रार्थ में अशान्ति होने की सारी जबाबदारी

अपने हस्ताक्षर द्वारा अपने ऊपर लीं किन्तु जे० पी० चौधरी टस से मस नहीं हुए। आखिर जब बाबू साहब लौटकर ड्योढी पर जाते थे उस समय जे० पी० चौधरी स्वयं आकर मिले और कुशवाहा क्षत्रिय परिचय नामकी अपनी बनाई हुई किताब देकर कहा कि इसका खण्डन आप करवा देवें तो मैं इन लोगों को जनेऊ नहीं दूं. वही कुशवाहा क्षत्रिय परिचय खण्डन आपके सामने है। यद्यपि यह खण्डन लिख कर गत चैत्र में ही समाप्त हुआ, किन्तु प्रेस में छापने के लिये श्रावण में दिया गया. प्रेस में कार्य की अधिकता से और प्रुफके इधर उधर आने जाने से १० मास में यह पुस्तक छपकर तैयार हुई है, व इस खण्डन में मान्य ग्रन्थों का प्रमाण दे कर सिद्ध किया गया है कि चातुर्वर्ण्य सनातन है। शूद्र जातिओं को यज्ञोपवीत संस्कार का अधिकार नहीं है, साथ २ जे० पी चौधरीके दियेहुवे प्रमाणों को उसी ग्रन्थ के प्रमाण से मिथ्या सिद्ध किया गया है। किन्तु लेख को कहां तक सफलता मिली है यह बात तो पाठकों की समीक्षकबुद्धि ही ठहरावेगी।

कविः करोति काव्यानि रसं रसविदो विदुः।
सूतेऽम्भः कमलं लेढि मकरन्दान् मधुव्रतः॥

प्रार्थी विनीतः
श्री दुःखमोचन

॥ श्रीः ॥

कुशवाहा क्षत्रिय परिचय-खण्डन ।

अर्थात्

"वर्णव्यवस्था तिमिर-मित्रोदय" ।

अर्थों संलब्धवर्णानथ पद्ध निवहे व्यूढगूढाभिसन्धीन् ।
वाक्ये शक्ये ध्वनीनान् ध्वनिगणगणकान्-हेपयन् निर्णयाब्धौ ॥
जातिव्यक्त्योर्विवेके श्रमितबहुविदो वेदयन् वेद्यमूलं ।
शूलं मित्रोदयोऽयं परिचय-चतुराचार व्यूके चकास्ति ॥ १ ॥
प्रतिपलं विमलं यदलं सतामभिमतं वितनं परिपीडितम् ।
इह जुगोप चुकोप कदर्थनान्मम पिपर्तु तदीश्वरसन्महः ॥ २ ॥

वाचकवृन्द !

इस समय मैं जिस विषय पर विचार कर रहा हूँ, यह विषय १२१ पृष्ठ की मुद्रित पुस्तक-रूप में है, इसके लेखक हैं काशीनिवासी पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ । इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर नाम है "कुशवाहा क्षत्रियपरिचय" और पुस्तकारम्भ में 'ओ३म्' के नीचे लिखा है स्थूलाक्षर में "वैदिकवर्ण-व्यवस्था" हमारे विज्ञ पाठकों की मर्मज्ञता से यह बात कभी छिपी नहीं रह सकती है कि लेखक हैं आर्यसमाजी और सिद्धान्त है दयानन्द सरस्वती का । इस बात का खुलासा हरएक पेज से ही नहीं बल्कि प्रति वाक्य से आगे होगा ।

विषयप्रवेश इस प्रकार किया गया है—

प्रश्न—जाति किसको कहते हैं ?

उत्तर—**समानप्रसवात्मिका जातिः** । (न्यायसूत्र)
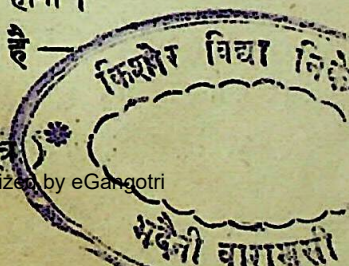
इस प्रकार शङ्कासमाधान के बाद आपने अपनी चारों ओर नजर देकर उद्भिज, अराडज, पिराडज, ऊष्मज इस प्रकार वर्ग चतुष्टय क़ायम किया है। फिर आपने दूसरे पैरा में पिराडजों का अवान्तर्भेद चतुष्पद—चौपाये पशुओं को सामने रख उसकी समानता व विषमता दिखाई है। यह समानता व भिन्नता जातिगत भी दिखाई गई है और व्यक्तिगत भी। इससे आपने एक जाति की दूसरी जाति से तथा एक गौ की दूसरी गौ से भिन्नता सिद्ध की है।

तृतीय पैरा में जो आपका कहना है सो आपके ही शब्दों से सुनिये—"एक एक समुदाय में इस समानता के दर्शाने वाला जो पदार्थगत धर्म है अथवा स्वरूप अथवा आकृतगत धर्म वा गुण है इसी का नाम लोगों ने 'जाति' रक्खा है। इस प्रकार समझाते हुये आपने लिख दिया है कि—जिस लिये अवयवों की समानता से जाति समझी जाती है अतएव जाति को 'सामान्य' भी कहते हैं। इस प्रकार आपने ३ पृष्ठों में अपनी तरफ़ से जाति समझाई है।

लेकिन हमें कहना पड़ता है कि 'जाति' किसे कहते हैं। इस प्रश्न का उत्तर जे० पी० चौधरी को किसी उत्तम वैयाकरण से अथवा नैयायिक से समझना चाहिये। यह न्यूनता आप में आत्मदोष से ही नहीं रह गई है, किन्तु आर्यसमाज के दोष से रहने पाई है, क्योंकि आपके मत के आचार्य दयानन्द सरस्वती की ही यह परिपाटी चलाई हुई है कि सिर्फ सूत्रों को पढ़ो, वृत्तिग्रन्थों को मत पढ़ो। इससे आप फ़ायदा यह उठाते हैं कि झट सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बन बैठते हैं और शास्त्रार्थ के लिये कृतभूरि परिश्रमों को ललकारते हैं और प्रतिवादियों की उपस्थिति में चन्द तरह की बहानेबाजी करते हैं, फिर पूर्वपक्ष में अपनी कपोल कल्पना रूप पुस्तक रखते हैं और उसका खराडन चाहते हैं। अस्तु,

अब आप जाति किसे कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर सुनें, जाति-शब्द के पर्याय दिखाते हुये अमरसिंह ने लिखा है—"**जातिर्जातं च सामान्यम्**" अर्थात् जाति, जात और सामान्य ये तीनों समानार्थक शब्द हैं। अभिधान संग्रह में भी

लिखा है—जानं जात्योघजानिषु जातिः सामान्यगोत्रयोः ।……ज्ञातिः पितृसगोत्रयोः । इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य ने जाति का अर्थ गोत्र भी किया है और ज्ञाति शब्द का अर्थ पितृसगोत्र व मातृसगोत्र किया है । इससे जाति शब्द की व्यापकता (अधिक देशवृत्तिता) सिद्ध होती है ।

अब नैयायिकों के सामान्य निरूपण पर भी दृष्टि दीजिये ।

सामान्यं द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेव च ।
द्रव्यादि त्रिकवृत्तिस्तु सत्ता परतयोच्यते ॥

इस कारिका की मुक्तावली टीका में—"नित्यत्वे सति अनेकसमवेतत्वम्, अनेकसमवेतत्वं संयोगादीनामप्यस्ति, अत उक्तं नित्यत्वे सतीति । नित्यत्वे सति समवेतत्वं गगनपरिमाणादीनामप्यस्ति अत उक्तमनेकेति । नित्यत्वे सत्यनेकवृत्तित्वमत्यन्ताभावेऽप्यस्ति अतो वृत्तित्वसामान्यं विहाय समवेतत्वमित्युक्तम् । एक व्यक्ति वृत्तिस्तु न जातिः । तथा चोक्तम्—'व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं संकरोऽथानवस्थितिः । रूपहानिरसम्बन्धो जातिबाधकसंग्रहः । तत्रैक व्यक्तिकत्वादाकाशत्वं न जातिः । तुल्यव्यक्तिकत्वाद् घटत्वं कलसत्वं न जातिद्वयम् । संकीर्णत्वाद् भूतत्वं मूर्तत्वं च न जातिः । अनवस्थाभयात् सामान्यत्वं न जातिः । समवायसम्बन्धाभावात् समवायो न जातिः । परत्वमधिकदेशवृत्तित्वम् । अपरत्वमल्पदेशवृत्तित्वम् ।

इस सन्दर्भ का आशय यही है कि जो नित्य होकर अनेक में समवायसम्बन्ध से मौजूद हो उसे सामान्य-जाति कहते हैं । पर और अपर इस भेद से सामान्य दो प्रकार का है । जो अधिक देश में वर्ते उसे परसामान्य कहते हैं और जो अल्प देश में वर्तें उसे अपरसामान्य कहते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि जाति भी सोपाधिक अनेक अवान्तर भेदों से विभक्त होती है ।

अब वैयाकरण के मत से जाति-विचार कीजिये—

"जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्" इस पाणिनी सूत्र ४ । १ । ६३ की व्याख्यां करते हुये भगवान् भाष्यकार लिखते हैं—"आकृतिग्रहणा जातिः" अर्थात् ग्रहण किया जाय जिससे वह कहाता ग्रहण याने ज्ञान । आकृति—रूपविशेष है ज्ञान जिसका उसे कहते हैं जाति अर्थात् अनुगत अवयवों से जानने योग्य वस्तु ।

यहां पर सन्देह हुआ कि शूद्रों में तो ब्राह्मण आदि जातियों से जुदा करनेवाला कोई अवयव विशेष नहीं है । फिर वृषलत्व जातिविशिष्टा वृषली और ब्राह्मणत्व जातिविशिष्टा ब्राह्मणी ये दोनों जातियां जुदी २ कैसे समझी जायँगी ? इस सन्देह को दूर करते हुये लिखते हैं—"लिङ्गानां च न सर्वभाक्" "सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या" इसका सङ्कलित अर्थ है—"असर्वलिङ्गत्वेसति एकस्यां व्यक्तौ कथनाद् व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिः" अर्थात् एक व्यक्ति में कह देने पर दूसरे व्यक्ति में बगैर कहे समझी जाय वह जाति है । बशर्ते यह कि वह सर्वलिङ्गी नहीं हो । यहां पर सर्वलिङ्गी का तात्पर्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास से है, इन चार लिङ्गों का अधिकार शूद्रों को नहीं है, किन्तु एक गृहस्थ लिङ्गाधिकार ही है । इस अर्थ में अप्रयुक्तता दोष दूर करने के लिये—"सवर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः" यह भारवि प्रयोग ही काफी है । ज्ञानेन्द्रभिक्षु तो लिखते हैं कि—"एकस्यां हि व्यक्तौ वृषलत्वे कथिते तदपत्यतत्सहोदरादौ कथनं विनापि तस्य (वृषलत्वस्य) सुग्रहत्वात्" । अर्थात् एक शूद्र व्यक्ति में शूद्रत्व जाति कह देने पर उसके लड़के में भाई में भी वह शूद्र जाति अच्छी तरह समझी जायगी । उन्हें ख़बर ही नहीं थी कि काशीनिवासी जे० पी० चौधरी जाति का लक्षण ऐसा विलक्षण बनावेंगे कि सभी मनुष्यमात्र को एक जाति कर देंगे ।

भगवान् भाष्यकार ने जाति का लक्षण दूसरा भी किया है । जैसे कि—

प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्त्वस्य युगपद्गुणैः ।
असर्वलिङ्गां बह्वर्थां तां जातिं कवयो विदुः ॥

इसका अर्थ विस्तारभय से यहां नहीं देते।

इस बात को सभी समझते हैं कि धर्म चाहे सो पदार्थगत हो या आकृतगत हो ऐसे ही गुण, रूप ये सब जाति से भिन्न वस्तु हैं। उदाहरणार्थ देखिये— गो शब्द उच्चारण करने पर कितनी वस्तुयें प्रतिभास होती हैं। इसके लिये भगवान् भाष्यकार लिखते हैं—"**गौरित्यत्र कः शब्दः ? किंयत्तत्सास्नालांगूलककुदखुरविषाण्यर्थरूपं स शब्दः, नेत्याह द्रव्यंनाम तत्। यत्तर्हि तदिङ्गितं चेष्टितं निमिषितं स शब्दो नेत्याह क्रियानाम सा। यत्तर्हि तच्छुक्लो नीलः कपिलः कपोत इति स शब्दो नेत्याह गुणो नाम सः। यत्तर्हि तद्भिन्नेष्वभिन्नं छिन्नेष्वछिन्नं सामान्यभूतं स शब्दो नेत्याह जातिर्नाम सा**"॥

यहाँ एक ही गो व्यक्ति में द्रव्य, क्रिया, गुण, जाति ये सब पदार्थ जुदे २ गिने गये हैं। फिर जे० पी० चौधरी ही कहें कि पदार्थगत धर्म अथवा स्वरूप अथवा आकृतिगत धर्म वा गुण को ही लोगों की तरफ़ से वे जाति किस क़दर समझते हैं?

हमारे पूर्व कथन से पाठक अच्छी तरह समझ जावेंगे कि जैसे ही गो-शब्द के उच्चारण से गोद्रव्य, गोक्रिया, गोगुण, गोव्यक्ति और गोजाति इन सब विषयों की उपस्थिति होती है, ठीक यही तरीक़ा सब पदार्थों में है। जिस तरह गौ में गोत्व जाति है उसी तरह द्रव्य में द्रव्यत्व जाति भी है। इस हालत में धर्म, स्वरूप, गुण इन सबको जाति कहना वाणी का दुरुपयोग करना है। "**मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी**" वाली बात को सार्थक करना है। धर्म को तो धूलियों से धूसरित चरणवाले हलवाहे तक जाति से जुदा समझते हैं, द्रव्य जाति नहीं है यह भी सबों के अनुभव सिद्ध है। बच गई गुण की बात सो पहले गुण का लक्षण ही देखिये—"**सत्त्व निविशतेऽपैति पृथग् जातिषु दृश्यते। आधेयश्चा क्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः॥**" अर्थात् जो द्रव्य में प्रविष्ट हो और उस द्रव्य से अलग होजाय तथा जुदी जुदी जातियों में दीख पड़े

और जो उत्पाद्य हो तथा अनुत्याधर्मी हो वह द्रव्यस्वभाव से भिन्नस्वभाववाला गुण है। अब जे० पी० चौधरी ही विचार करें कि क्या जाति भी द्रव्य में प्रविष्ट होकर निकल जाती है ? अगर नहीं तो फिर द्रव्य में प्रवेश निर्गम करनेवाला गुण ही जाति कैसे समझा जायगा ?

इस प्रकार जाति के विलक्षण लक्षण करने के बाद जे० पी० जी लिखते हैं कि—"मनुष्य एक जाति है" परीक्षा करके आप कहते हैं कि अनेक देश के निवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अगर कृत्रिम पोशाक हटावें तो उन्हें कोई नहीं पहचान सकता कि इनमें ब्राह्मण कौन और क्षत्रिय कौन है ? भिन्न जातियों के पशु पक्षियों को लोग बेरोक टोक समझते हैं कि यह अमुक जाति का है, लेकिन मनुष्यों में यह बात नहीं है। मनुष्यों में तो सभी को सब पूछते हैं कि आप किस जाति के हैं ? अतएव चारों वर्णों में प्राकृतिक भेद न होकर बनावटी भेद है। इसलिये चारों वर्णों को मानना फिजूल है। अतः मनुष्य एक जाति है। अगर इन चारों वर्णों में योगियों की तीखी निगाहों से भी भेद दीख पड़े। फिर भी वर्ण-भेद मन्तव्य नहीं, क्योंकि वास्तविक भेद है ही नहीं।

इस प्रकार जे० पी० चौधरी ने जातपांत की जड़ काटकर भण्डा फोड़ कर दिया है। यहां तो जातिखण्डन में अखण्ड मण्डलाखण्ड ही आप बन बैठे। जिस चातुर्वर्ण्य की सृष्टि में विधाता ने तरह तरह की तपस्यायें की थीं और विष्णु भगवान् ने भू-भूरि-भार से अपने को मुक्तसा समझा था व जिस चातुर्वर्ण्य की आशा स्वर्गदेव, भूदेव, वह्निदेव, अतिथिदेव, विश्वेदेव सभी रखते थे, उसी चातु-र्वर्ण्य को जे० पी० जी ने कई पंक्तिरूप सागर में क़लम के सहारे डुबो दिया। "**किमाश्चर्यमतः परम्**" आपने तो अपने गुरु दयानन्दजी को भी गुड़ ही बना दिया (दयानन्द सरस्वती जातिभेद मानते हैं) खुद चेला चीनी बन गये। आप तो जातिविषय में बुद्ध के भी प्रबोधक और चार्वाक के भी आचार्य बन बैठे। एकदम जातिविषयक बोझ को दुनियां के शिर से उतार फेंका।

अब आगे का रङ्ग देखिये—"आप लिखते हैं कि जातिभेद जानने के लिये, अन्यान्य कारण भी हैं, उन पर ध्यान दीजिये।

(१) जो यथार्थ में भिन्न जातियां हैं वे परस्पर एक दूसरे के कार्य की नक़ल नहीं कर सकती हैं। जैसे मकड़ी के समान जाल अन्य कीट नहीं बना सकता। मधुमक्षिका के समान अन्यान्य मक्षिका मधु नहीं बना सकतीं। घोड़े की चाल व बोल की नक़ल गौ नहीं कर सकती, परन्तु बाल्यावस्था से व्यवस्था करने पर शूद्रबालक ब्राह्मण के समान पूजा पाठ कर सकता है……इस कारण मनुष्य में जातिभेद नहीं है। इस प्रकार की दलीलें छः संख्याओं में हैं। हम यहाँ क्रम से ही उनका खण्डन कर सकेंगे।

जैसे सावन के अन्धे को हमेशा हरिआली ही दीखती है, वैसे जे० पी० चौधरी हरबात में एक जात ही देखते हैं, क्या कोई विचारशील पुरुष इस बात को मान सकता है कि भिन्न जातीय व्यक्ति अन्य जाति की नकल नहीं कर सकता, दुनियां का अनुभव साक्षी है कि एक मनुष्य अनेक जाति की बोली बोल लेता है सो यहाँतक कि मनुष्यकृत शृगाल के अनुकरण शब्द को सुनकर खुद शृगाल भी फंस जाता है। मार्जार के कलह कोलाहल की मनुष्यकृत नकल सुनकर मनुष्य चकित हो जाते हैं। प्राणिविज्ञान के जानकार जानते हैं कि एक एक कीट पतङ्ग इस दर्जे की नकल करते हैं कि वृक्ष के पत्तों में उनको कोई पहचान भी नहीं सकता कि कौन पत्ता है और कौन कीट? क्या इससे विजातियों से विजातियों का अनुकरण करना सिद्ध नहीं होता है? फिर इससे सिद्धान्त करना कि जो नक़ल कर सके या जिसकी नकल की जाय वे सब सजातीय हैं नितान्त भूल है, क्योंकि नकल करना समान जातियों में सबूत नहीं हो सकता। इसी तरह सिखाने पर अगर शूद्र बालक पुजारी बन जायगा तो बन सकता है, लेकिन केवल पूजा कर लेने से ही वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नहीं बन सकता। इस जाति में तो जन्म और कर्म दोनों ही कारण हैं जिसमें सारी दुनियां का अनुभव ही प्रमाण

है केवल किसी पुस्तक को रट लेना और भक्तिमार्ग की चेष्टा कर लेने से ही अगर जाति बदल जाती तो शुक और शाखामृग की जाति आज तक ब्राह्मण जाति में गिनी जाती। ऐसा न हुआ न होगा ही।

(२) दूसरी दलील यह है कि असल जात बदलती ही नहीं जैसे हाथी घोड़ा नहीं बन सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों जातियां बदल जाती हैं अर्थात् ब्राह्मण भी शूद्र हो जाता है, इसलिये मनुष्यों में अनेक विध की जातियां नहीं हैं।

इस बात को सभी समझते हैं कि जहाँ कहीं उत्कृष्टता है वह किसी की अपेक्षा से है और जहाँ उत्कृष्टता है वहाँ अपेक्षाकृत अपकृष्टता भी है, यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त है। जब कि चातुर्वर्ण्यों में जन्मकृत, गुणकृत, कर्मकृत, उत्कृष्टता, अपकृष्टता शास्त्र-प्रमाणों से सिद्ध है तब न्यूनता आजाने का कारण गुण, कर्म हो सकता है, किन्तु उन्नति नहीं हो सकती है क्योंकि जन्मरूप कारण नहीं है। कहने का मतलब यह कि जातिभ्रष्ट आदमी हो सकता है, किन्तु उत्कृष्ट जाति में अपने को पलट नहीं सकता है। इस विषय को हम एक स्वतंत्र प्रकरण में समझावेंगे।

(३) तीसरी दलील है कि विरुद्ध जातियों में परस्पर संयोग से सन्तान पैदा नहीं हो सकती हैं, किन्तु मनुष्यमात्र से मनुष्यजाति की सन्तान पैदा कर सकती है। सिवाय इसके मनुस्मृति में चारों वर्णों की लड़कियों से ब्राह्मण को विवाहाधिकार है। अगर भिन्न जातियां मनुष्यों में होतीं तो सन्तानोत्पत्ति, पारस्परिक प्रीति और विवाहाधिकार क्यों कर होता।

यहां जे० पी० चौधरी यह समझें कि परस्पर सन्तानोत्पत्ति करना, प्रेम करना अथवा विवाहाधिकार रखना ये कोई जाति के कारण नहीं हैं। **"जन्मनिबन्धना जातिः कर्म निबन्धना च"** ऐसी धर्मशास्त्र की आज्ञा है। और ठीक ऐसा ही लोगों का अनुभव भी है। आप एक अजीब नास्तिकवाद आगे लाकर सारी दुनियां को जातिभ्रष्ट करना चाहते हैं यह आपकी धृष्टता है। यह आपकी चालबाजी भी किसी से छिपी नहीं है कि आप जाहिर तौर पर तो चारों वर्णों को

कायम कर कुशवा कोयरी को ऊंची जाति में लाने का लालच देते हैं और भीतर ही भीतर विश्व भर को आर्यसमाजी बनाना चाहते हैं और जातिमात्र को तिलाञ्जलि देते हैं। अफसोस की बात है कि जिस चातुर्वर्ण्य की सृष्टि मनुजी ने तपस्या करके ब्रह्माजी के द्वारा की गई कहते हैं जैसे कि—"**सर्वस्यास्यतु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः। मुखबाहूरुपज्जानां पृथक् कर्माण्यकल्पयत्॥**" अर्थात् समस्त सृष्टि के कल्याणार्थ अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माजी ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों के लिये धर्म कर्म अलग अलग बनाये। इस बात में सभाष्यवेद, अष्टाविंशत् स्मृतियां और अष्टादश पुराण एवं शतशः ब्रह्मर्षि, राजर्षिओं का अनुभवसिद्ध आदेशमय निबन्धग्रन्थ व सिर्फ़ भारतवासियों का ही नहीं किन्तु भारतीय इतिहास से जानकारी रखने वाले और ईसा से पूर्व भारतवर्ष में प्रवास करने वाले विदेशी प्रवासियों के अनुभव से सिद्ध ऐसा चातुर्वर्ण्य पर जे० पी० चौधरी इस तरह छुरी फेरते हैं। गजब की बात है हम फिर भी जे० पी० चौधरी को समझा देते हैं कि आप परस्पर में स्त्री पुरुष द्वारा सन्तानोत्पत्ति या पारस्परिक प्रेममात्र को जातिमूल समझने की भूल नहीं करें विशेषतया—'**न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंङ्गिनम्**' इस गीतावचनानुसार बेचारे अपढ़ कोयरी जातियों की बुद्धि पर अपनी वाक्चातुरी का परदा नहीं देवें। इस बारे में आपका दृष्टान्त आपको निग्रह स्थान में लाता है जैसे कि आप कहते हैं घोड़ा और गदही से सन्तान होती है। फिर आपही कहें कि विजातियों में सन्तानोत्पत्ति हो जाती है या नहीं? खच्चर से सन्तान नहीं होती है यह खच्चर का दोष है। इस बारे में जाति क्या वस्तु है इस पर परामर्श हम जातिविवेक प्रकरण में करेंगे।

(४) चतुर्थ संख्या में आप लिखते हैं कि जैसे अश्वजाति, गोजाति, गजजाति सर्वत्र पाई जाती है इसी तरह मनुष्य-जाति भी सार्वत्रिक है। जैसे गौ भैंस भिन्न जातीय समझी जाती है ऐसे यूरोप आदि किसी द्वीप में भी मनुष्यों में जातिभेद नहीं समझा जाता, अतः मनुष्यों में जातिभेद नहीं है यह सिद्ध होता है।

इसके उत्तर में निवेदन है कि आर्यसभ्यता और भारतीयमर्यादा अपनी सानी नहीं रखती है। इस बात को शिक्षितमात्र समझते हैं और हरएक भारतवासियों को आत्मसम्मान के लिये ऐसा समझना लाज़िम है। संस्कृतसाहित्य में भोग्यभूमि और कर्मभूमि ये दो विभाग हैं। जिनमें भारत कर्मभूमि है, इसी के अवान्तर्भेद पुण्य-भूमि भी है जैसे अमरसिंह ने लिखा है--'**आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं-विन्ध्यहिमालयोः**" अर्थात् विन्ध्याचल और हिमालय का मध्यप्रदेश आर्यावर्त्त और पुण्यभूमि कहाता है। इस भूमि की तारीफ़ विश्वगुणादर्श चम्पू में देखें। और भी लिखा है-"**गायन्ति देवाः किलगीतकानि। धन्यस्तु ते भारत-भूमिभागे। भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात् स्वर्गापवर्गप्रद हेतुभूते**" अर्थात् भुक्ति और मुक्तिप्रद भारतदेश में जन्म लेने वाले पुरुष धन्य हैं ऐसा देवगण भी प्रसन्नता से गीत गाते हैं और उसी भारत के पवित्र क्षेत्र में विद्या-व्यवसाय करने वाले जे० पी० चौधरी अन्य द्वीप के दृष्टान्तों से सिद्ध करते हैं कि मनुष्य-मात्र एक जाति है। इस तरह विदेशियों के दृष्टान्त से तो श्राद्धमन्दिर जातिधर्म सभी अनायास डुबाये जासकते हैं। प्राच्य पाश्चात्य शिक्षा के पारङ्गत विद्वान् जानते हैं कि जिस ख्रिस्तीधर्म के समर्थ प्रचारक ७०-७० कोटि रुपयों का बजट बनाकर इस ग़रीब भारत में असफल बने रहते हैं। उस असफलता का प्रधान कारण इस भारत की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ही है। यही जाति व यही धर्म आजतक भारतीय गौरव को क़ायम रक्खा है और इसी चातुर्वर्ण्य की रचना को देखकर अन्य द्वीप निवासी सुधारक लोग तरसते हैं। ऐसी उपयोगी जाति को जे० पी० चौधरी जड़ से उखाड़ना चाहते हैं। यह भी एक क्रान्ति है या फैसन है।

(५) पांचवीं संख्या में आप फरमाते हैं कि वेद और शास्त्र में मनुष्यों की एक जाति ही कही गई है। पुराणों में भी यही बात है फिर भी अन्धेर की बात है कि लोग जातिभेद मानते हैं! ऐसा लिखकर आप छठी संख्या में लिखते हैं कि ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों के चार लक्षण कहे गये हैं। यदि वे चार जातियां होतीं तो वैसे लक्षण नहीं कहे जाते।

पाठक ज़रा उपरोक्त बातों पर विचार करें कि अगर वेद, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्रों में चारों वर्णों का होना नहीं लिखा तो फिर चारों वर्णों के चार लक्षण किसने और कहाँ कहे हैं ? क्या जे० पी० चौधरी के मत से जिस शास्त्र में जाति-भेद नहीं हो वही धर्मशास्त्र है और जिसमें जातिभेद, धर्मभेद व कर्मभेद कहे गये हों वह पापशास्त्र है । ऐसी अन्धेर की बात तो किसी खण्डन ग्रन्थ में नहीं देखी जाती है । आप आर्यसमाजियों में अजीब तजवीज़ यही देखने में आती है कि आप लोग अपने मत को पुष्ट करने में श्रुति, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र सभी को प्रमाण मानते हैं और अपने मन्तव्य के बरख़िलाफ़ सभी को अप्रमाणित सिद्ध करते हैं। जातिभेदों में श्रुति-प्रमाण स्मृतिप्रमाण हम जातिविवेक प्रकरण में देंगे ।

आगे आप लिखते हैं कि जब शमदमादि ब्राह्मण के, शौर्य तेजादि क्षत्रियों के कृषि गोरक्षा आदि वैश्य के, परिचर्या आदि शूद्र के लक्षण गीता बतलाती है तब इससे सिद्ध है कि जिसमें ये सब गुण स्वभाव से पाये जायँ उस व्यक्ति की वह जाति कायम हो सकती है । ये गुण किसी ख़ास जाति वा वंश के ऊपर निर्भर नहीं हैं और यह व्यवस्था द्वीपद्वीपान्तर के मनुष्यों में (लागू) संचारित होसकती है। इससे भी जातिभेद नहीं है ।

पाठक विचार करें कि प्रमाण को प्रमेयों के साथ और लक्षण को लक्ष्य के साथ घटाना यह साधारण बुद्धि का अधिकार नहीं है। उदाहरण के लिये हम लक्ष्य लक्षण को ही लेते हैं—यहाँ सन्देह होता है कि पहले लक्ष्य वा लक्षण किसकी सत्ता मानी जाय ? इस विषय में श्री दयानन्द सरस्वती के गुरु श्री विरजा-नन्दजी के भी प्रमाणित सम्मानित पातञ्जल महाभाष्य का ही दृष्टान्त हम यहाँ देते हैं, भाष्यकार लिखते हैं—"**कथं पुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्**" ?—"**सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे**" "**सिद्धे शब्दे अर्थे सम्बन्धे चेति**"। यद्यपि यहाँ का भाष्य कैयट दोनों लिख देना प्रासङ्गिक था, किन्तु विस्तारभय से नहीं लिखते हैं, यहाँ इतना समझना आवश्यक है कि जैसे शब्द, अर्थ, सम्बन्ध ये तीनों सिद्ध होने पर ही भगवान् पाणिनि ने लक्षण बनाया

है ठीक ऐसे ही जाति के सिद्ध होने पर ही उसके शमदमादि लक्षण बनाये गये हैं किन्तु शमदमादि लक्षणों से लक्ष्यभूत जातियां नहीं बनाई गई हैं । जे० पी० चौधरी अगर गीता को प्रमाण मानते हैं तो गीता को ही शुरू से पढ़ें फिर देखें कि गीता से जातियां सिद्ध होती हैं या नहीं ? गीता के प्रथमाध्याय में ही अर्जुन का विषाद अपनी जातीय दुर्बलता सोचकर ही शुरू होता है । अर्जुन कहते हैं—

"यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥
अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतंति पितरोह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् से कहते हैं कि अगर लोभ से नष्ट बुद्धि हुये ये दुर्योधनादिक कुलक्षयजन्य पाप को और मित्रद्रोह रूप पातक को नहीं देखते हैं तो क्या इस पाप से अलग रहना हम लोग भी न समझें । जब कि हम कुलक्षय रूप दोष को साफ़ देख रहे हैं ? कुल के क्षय होने पर कुलधर्म नष्ट होजाते हैं । जो कि सनातन से चल रहे हैं । सनातनधर्म के नष्ट होने पर समस्त कुल पर अधर्म का आक्रमण होता है । अधर्म के आक्रमण होने पर कुलस्त्रियां ख़राब होती हैं, स्त्रियों के ख़राब होने पर वर्णसङ्कर उत्पन्न होता है, वह वर्णसङ्कर कुलघातियों के तथा कुल के नरक का कारण बनता है फिर नतीजा यह होता है कि पिण्डदान

और जलदान से अर्थात् श्राद्ध तर्पण से वञ्चित रहकर पितृलोक नीचे गिरते हैं ? इस तरह कुलघ्नों के इन दोषों से सनातन कुलधर्म व जातिधर्म समूल नष्ट होजाते हैं। जातिधर्म रहित मनुष्यों का नरक में वास नियत होता है।

इस तरह जब गीता में जातिधर्म, कुलधर्म की महिमा गाई गई है। फिर जे० पी० चौधरी शमदमादि साधनों से आज द्वीप द्वीपान्तर में नवीन जातिनिर्माण क्यों करना चाहते हैं ? असल बात तो यह है इन समाजियों को देवता पितृपूजा श्राद्ध जातिधर्म सभी कुछ डुबाना है, यह तो सिर्फ़ उच्चजाति के लालच से भोले कोयरी भाई को भुलाकर जातिभ्रष्ट और धर्मध्वस्त करना चाहते हैं। यह हमारी बात अप्रिय होने पर भी सत्य है। सो आप लोगों को जे० पी० चौधरी के ही लेखों से सिद्ध करके आगे दिखावेंगे। जे० पी० चौधरी ने पहले लिख दिया है, कि वेद, धर्मशास्त्रादि में कहीं भी चारों जातियों का वर्णन नहीं है। अब फिर आप ही "**ब्राह्मणस्वरूप निरूपणम्**" इस शीर्षक के नीचे लिखते हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ मनु।
शमो दमस्तथा शौचं शान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥ गीता।

ये दोनों श्लोक आप ब्राह्मणस्वरूप में प्रमाण देते हैं। जे० पी० चौधरी ही कहें कि ब्राह्मण जाति का प्रमाण उन्हें शास्त्र में मिला या नहीं ? इस तरह अपनी बात के विरोध में प्रमाण पेश कर "**वदतोव्याघातः**" वाली बात सिद्ध हुई या नहीं ?

उपरोक्त दोनों श्लोकों का जो उन्होंने (पुरोभागिता के साथ) अर्थ किया है सो हमें मान्य है। अमान्य यह अंश है जैसे कि वे लिखते हैं कि ये लक्षण जिनमें पाये जायँ वे ही शास्त्र से ब्राह्मण का दावा कर सकते हैं। जिनमें उपर्युक्त गुण हों उन्हें ब्राह्मण मानो और जिनमें नहीं हों उन्हें मत मानो और लोगों को इसका उपदेश देकर जगत् में सभ्यता का प्रचार करो।

इस प्रकार जे० पी० जी का मतलब वही आर्यसमाजी सिद्धान्त—"पुरानी जातिपांति तोड़फोड़ फेंक दो, नई एक आर्यसमाजी जाति मानो जिसमें भंगी, डोम, मुसलमान सभी मिलकर वेदमन्त्र की खिल्ली उड़ावें। यही आर्यसभ्यता है इसी का उपदेश दुनियां को दो। इसी को सभ्यता कहते हैं।

यहाँ पाठक समझें कि यही आर्यसमाजियों की पॉलिसी है कि आर्यसमाजी लोग आर्यों की आन्तरिक दुर्बलता दिखाकर व अनार्यों को आर्य बनाने का लालच देकर, स्त्रियों को देवियां कहकर, विधवाओं को सधवा बनाकर ये लोग भारत को अध:पतित बनाना चाहते हैं। इनके फन्दे में पड़ जाना जातिधर्म से नष्ट होना है देखिये आर्यसमाजियों ने पितरों को लुप्तपिण्डोदक क्रिया कर दिया, मन्दिरों से देवों को हटवाया, अब कोयरी कुम्हारों के कन्धे पर जनेऊ डालकर यज्ञोपवीत की पवित्रता के साथ ही जातीय पवित्रता भी दूर करना चाहते हैं?

साफ़ बात है कि शम, दम, शौच, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य ये सब गुण बहुत से ब्राह्मणों में नहीं मिलेंगे और तप:प्रभाव से अथवा जन्मान्तरीय संस्कार से या सत्सङ्गति से नीच जातियों में मिलेंगे, लेकिन इससे जातिपरिवर्तन नहीं होता है। दुनियां जानती है कि कबीर, रैदास, अजामिल, गणिका आदि भक्तों में श्रेष्ठ समझे गये हैं, किन्तु इस आर्यभूमि में बसने वाले किसी ने उन्हें ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं कहा। आज जे० पी० चौधरी किस खेत की मूली हैं कि वे द्वीप द्वीपान्तर में शमदमादि लक्षणों से नवीन जाति निर्माण करेंगे। आर्यसमाजी बनावें तो खुशी उनकी, जिसे कर्मकाण्ड अखरता है, हृदय से श्रद्धा हटती जाती है, मन्दिर में देव-दर्शन करते शरम आती है। वह अक्रिय, अश्रद्धालु, नास्तिक चाहे सो बन सकता है।

जे० पी० क्षत्रियस्वरूप लक्षणम्।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ मनु।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम् ॥

इस प्रकार शौर्य, धैर्य, गाम्भीर्य, ऐश्वर्य, युद्ध में स्थैर्य आदि गुण आजकल जन्म के क्षत्रियों में क्या हैं ? यदि नहीं तो सबके सब क्षत्रिय कैसे ? जिनमें हैं वे क्षत्रिय हैं ?

खण्डन—–उपरोक्त दलीलें कुलीन विद्वानों को सुनने लायक़ ही नहीं हैं। क्योंकि शौर्य, धैर्यादि गुण प्रति व्यक्ति में अनित्य पाया जाता है। उदाहरणार्थ क्षत्रियों की नीतिमत्ता व शूरता को ही ले लीजिये, प्रचीन व नवीन इतिहास से यह बात सिद्ध है कि जो क्षत्रिय राजा जयचन्द पृथ्वीराज अपने राज्य के आरम्भ-काल में प्रखर नीतिमत्ता व प्रचुर शूरता का परिचय पूर्ण दे चुके थे। वे ही जय-चन्द आखिर नीतिःनिष्णात नहीं रहे और जो पृथ्वीराज कई बार दुश्मनों का मद चूर चूर कर चुके थे वे ही अन्त में शत्रु के हाथ से तरह तरह के कष्टों को सहे। क्या कोई कह सकता है कि गुणों के साथ उनकी जाति बदल गई ? अगर कोई ऐसा कहने का दुस्साहस करता है तो वह केवल परिस्थिति की प्रति-कूलता से गिरिदरी के शेरों के समान चुप बैठने वाले खानदानी क्षत्रियों का दिल दुखाता है। उसकी बात में सत्य का लेश भी नहीं है। हमारी समझ में अनित्य गुणों से नित्य जाति की कल्पना करना निरी अज्ञता है।

जे० पी० वैश्यस्वरूप लक्षणम् ।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥

अर्थात् पशुरक्षा, वाणिज्य, व्याज पर धन कमाना, यज्ञ करना, पढ़ना, खेती करना ये सब कर्म वैश्य की जीविका हैं।

खण्डन—–लापरवाही भी एक सीमा रखती है भला वैश्यों की दान, यज्ञ जीविका किस तरह हो सकती है। ऊपर हैडिंग में लिखा स्वरूपलक्षण और अर्थ करते हुए लिखा है कि ये सब कर्म वैश्य की जीविका है। अब वैश्य जाति

का लक्षण क्या है ? सो राम जाने ? अगर कोई इन्हीं चार कर्मों की कसौटी पर कसकर वैश्य जाति को क़ायम करे तो यह उसकी भूल होगी, क्योंकि कौन नहीं जानता है कि अध्यापकी करने वाले व न्यायालय में अधिकार की रक्षा करने वाले वैश्य भी वैश्य ही हैं ।

जे० पी० शूद्रस्वरूप लक्षणम् ।

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत् ।
एतेषामेववर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ मनु ।

प्रभु परमात्मा ने शूद्रस्य-विद्याविहीनों को (मानसिक परिश्रम नहीं करने वाले को वैदिककाल में शूद्र कहते थे) ऐसे शूद्र के लिये तीनों वर्णों की सेवा करने की आज्ञा दी है । यह बात ठीक भी है जो मानसिक परिश्रम नहीं कर सकता है वह शारीरिक परिश्रम के सिवा और करेगा ही क्या ? संसार में दो ही प्रकार के परिश्रम हैं—एक मानसिक दूसरा शारीरिक । जो मानसिक परिश्रम से अपना निर्वाह नहीं कर सकता है उसे लाचार होकर शारीरिक परिश्रम करना ही पड़ेगा । मनुष्यमात्र स्वाभाविक रीति से चार भागों में विभक्त हैं । Priest पुरोहित, Soldier सैनिक, Trader वैश्य, Labourer कामकार । दूसरे शब्दों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । यह नियम सब देशों में समान है, परन्तु हमारे यहाँ भिन्न है, क्योंकि यहाँ इसे जन्म से मानते हैं । परन्तु ऊपर के प्रमाण से केवल जन्ममात्र से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि नहीं हो सकता । हम यह नहीं कहते कि ब्राह्मणादि का पु त्र ब्राह्मणादि नहीं हो सकता, परन्तु उक्त गुण होने से प्रत्येक वर्तमान काल्पनिक जाति का पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य होसकता है। जिनमें ब्राह्मण के गुण पाये जायँगे वे ब्राह्मण, जिनमें क्षत्रिय के गुण पाये जायँगे वे क्षत्रिय, जिनमें वैश्य के गुण पाये जायँगे वे वैश्य, जिनमें शूद्र के गुण पायें जावेंगे वे शूद्र कहलावेंगे, परन्तु कोई किसी से नीच है यह बात ठीक नहीं । वैदिक समय में चारों का दर्जा समान था । वेद में ऐसा एक भी मन्त्र नहीं है जिसमें शूद्र को नीचा कहा गया हो ।

खण्डन—पाठक पहले यह समझें कि है न आर्यसमाजी की बात। अब युक्ति की ओर नज़र दीजिये—"मनु महाराज ने जो **शूद्रस्य अनसूयया त्रयाणां वर्णानां सेवैव एकं कर्म प्रभुः समादिशत्**" अर्थात् परमात्मा ने शूद्रों के लिये एक ही कर्म करने की आज्ञा दी है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीनों वर्णों की सेवा गुण में दोष लगाये बिना करे। अर्थात् ऐसा हरगिज़ नहीं कहे कि ब्राह्मणादिकों में क्या रखा है? वे भी मनुष्य और हम भी मनुष्य हैं। फिर हम सेवक क्यों? व वे ब्राह्मणादिक हमारे सेव्य क्यों? यहाँ पर 'शूद्रस्य' इस पद का अर्थ किया जाता है 'विद्याविहीनस्य' और इस पर टिप्पणी की जाती है कि जो मानसिक परिश्रम नहीं करसके अथवा जिन्हें पढ़ने पर भी विद्या न आसके। मानसिक परिश्रम न करने वाले को वैदिककाल में शूद्र कहते थे, इति। नीति में देखते हैं, लिखा है—"**विद्याविहीनः पशुः**" अर्थात् विद्याहीन चाहे किसी जाति का हो वह पशु है, फिर यही विद्याहीनता शूद्र जाति की जड़ कैसे होगई? अगर 'तुष्यतु दुर्जनः' इस न्याय से इस उपरोक्त दलील को मान भी लें तथापि सारा परिवार का परिवार एक जाति में हरगिज़ नहीं गिना जासकता है क्योंकि जैसे किसी परिवार में एक ही पिता के अनेक पुत्र, कोई पण्डित कोई मूर्ख, कोई शूर तो कोई कायर, कोई व्यवसायी तो कोई निरुद्योगी, जैसे आज देखा जाता है वैसे ही पहले देखा जाता था, और भविष्य में भी देखा जायगा, इस स्थिति में तो ब्राह्मण के लड़के शूद्र और शूद्र के लड़के ब्राह्मण पहले हुये होगें और वर्तमान में होते रहते व भविष्य में भी होते, क्या यह बात किसी समझस हृदय को जंचेगी? यह भी कोई युक्ति है? इसीको कहते हैं कुतर्क, मिथ्याप्रलाप, और पाखण्ड! अनुभव साक्षी है कि एक एक शूद्र का लड़का पढ़ाई में कमाल कर दिखाया, किन्तु बेचारा आत्म परिचय शूद्र में देता आया, मनोविज्ञान के जानकार जानते हैं कि मानसिक परिश्रम को करना या नहीं करना यह व्यक्ति धर्म है किन्तु जाति धर्म नहीं, आज भी देखते हैं जहाँ अस-च्छूद्रों का लड़का पाटी, पेंसिल लेकर उत्साह से एल० पी० यू० पी० स्कूल में जाता है वहीं ब्राह्मण का लड़का भय के मारे थर्राता है। इस घटना को देखकर

क्या उन दोनों की जात बदल दी जायगी ? ये एक दम वाहियात बातें हैं। अगर इस तरह का परिवर्तन हुआ फिर तो जाति एक मजाक की बात रह जायगी। कल्पना कीजिये कि एक ब्राह्मण बालक ने अनाथ होकर सर्व प्रथम पाठशाला में पण्डितजी से अष्टाध्यायी शुरू की। एक सप्ताह के बाद पंडितजी से त्रस्त होकर अथवा गुजर बसर न पाकर मियाजी से उर्दू तालिम पाने लगा, फिर एक मल्लशाला में कुश्ती सीखने लगा, तदुत्तर हलुआइ की दुकान पर मधुर पदार्थ बनाने व बेचने लगा; वहां से छूटा तो एक होटल में नोकर बना, तत्पश्चात् किसी लोहार, सोनार, कुमार आदि व्यवसायियों के साथ काम किया, अब उसकी इस तरह कर्मों की विभिन्नता से कौनसी जाति मानी जायगी ? अब गुण की तरफ देखिये एक ब्राह्मण प्रात:काल में सौम्यभाव से सत्कर्म किया, तत्पश्चात् दान परोपकार किया, पैर पुजाया, स्वाध्याय किया, विद्यार्थियों को पढ़ाया, फिर कृषि कर्म में लगा, मजदूरों का कार्य निरीक्षण किया, किसी को क्रोध से गाली दी, किसी को पीटा, फिर अपने आयव्यय को देखता हुआ व्याज में किसी से ज्यादा लिया और किसी को उचित में भी छोड़ दिया, तत्पश्चात् न्यायालय में झूठी साक्षी दी, कभी किसी को सान्त्वना देकर लड़ने नहीं दिया और कभी शान्ति से बैठने वाले को उकसाकर लड़ाया, इसतरह जब कि एक ही व्यक्ति में विरुद्ध गुण, कर्म, धर्म एक ही दिन में देख पड़ते हैं तब उसकी कौनसी जाति मानी जायगी। क्या यूरोपादि देशों में पुरोहित, सैनिक, वैश्य, कामगार ये पद प्रतिदिन बदलते हैं ? क्या ये पद किसी के चिरस्थायी नहीं रहते ? आप के हिसाब से तो जाति एक महाजनी नौकरी ठहरी जो सुबह इस दुकान और शाम को उस दुकान में तबदील हो जाती है। आश्चर्य कि बात तो यह है कि सुबह का ब्राह्मण मध्याह्न में क्षत्रिय और वही शाम को वैश्य या शूद्र गुण देख कर समझना चाहिये। आपकी इस बेतुकी बात पर कौन विश्वास करेगा ? आप लिखते हैं " मानसिक परिश्रम नहीं करने वाले को वैदिक काल में शूद्र कहते थे ", यहां हमें आपसे समझना है कि वैदिक काल कौनसा काल है ? और शूद्र कहने वाले कौन थे ? और मानसिक परिश्रम नहीं कर सकता है, इस बात की

जांच किस तरह की जाती थी ? बस इन्हीं तीनों प्रश्नों के उत्तर से आपकी पोल खुल जायगी ! वैदिक काल से आपका मतलब वेदारम्भ काल से है अथवा वेदों के प्रौढ प्रचार से है या और किसी से ? हमारी समझ से वेद प्रचार आदि को वैदिक काल कहना वेद विरुद्ध होगा। क्योंकि—"**प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उत आर्ये**" इत्यादि वैदिक प्रयोगो में शूद्र शब्द आया है। तब आपको लाचार होकर वेदारम्भ काल लेना पड़ेगा, इस काल का निश्चय करना टेढी खीर है। क्योंकि इधर देखते हैं तो "**अपौरुषेयं वाक्यं वेदः**" इधर अनेक विद्वानों ने अपनी अगाध मेधा से वेदों की प्राचीनता संसार की ऐतिहासिक परिधि से बाहर सिद्ध कर दी है, इस हालत में आपके ही कथन से सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भ से ही शूद्र जाती है, और उसको शूद्र कहने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों जातियां हैं। आज जो आप गुण कर्म से जाति को बाजारू सौदा अथवा महाजनी नौकरी कायम करते हैं यह आपका नास्तिकवाद है।

जे० पी०—"**लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुनिर्णयः**"..........हमने ब्राह्मणादि के लक्षण शास्त्र से ऊपर दिखला दिये हैं, जो कोई कहे हम ब्राह्मण हैं उसमें ब्राह्मण के लक्षण मिलाकर देखो; जो कोई कहे हम क्षत्रिय हैं उनमें क्षत्रिय के लक्षण मिलाकर देखो, इसीतरह वैश्य और शूद्र का, यदि उक्त लक्षण उनमें मिल जांय तो उन्हें ब्राह्मणादि मानो, यदि न हों तो मत मानो।

खण्डन—"यह ठीक बात है कि लक्षण व प्रमाणों से वस्तु सिद्धि होती है, किन्तु असिद्ध—अनिर्णीत की सिद्धि होती है कि सिद्ध वस्तु की ही सिद्धि होती है ? अगर सिद्ध वस्तु की ही सिद्धि की जाय फिर तो 'पिष्टपेषण' का दोष प्राप्त होगा, जैसे कि कहा जाता है—"**कृतस्य करणं नास्ति मृतस्य मरणं यथा**" अर्थात् जैसे मरा हुआ पुनः मरता नहीं वैसे ही किया हुआ कार्य पुनः करना फिजूल है ? जबकि लक्षण प्रमाणों से ही जाति सिद्ध की जाती अथवा समझी जाती तब फिर किसी से कोई जाति क्यों पूछते ? ऐसा कोई लक्षण प्रमाण भी तो जे० पी० चौधरी नहीं दिखाते हैं जिससे कोई झट समझले

कि अमुक की अमुक जाति है, क्या शम दम, शौच, शान्ति आर्यवादित्व ज्ञान विज्ञान, आस्तिक्य, शौर्य, तेज, धैर्य, ढिठाई, दान, ऐश्वर्य, पशु पालन, दान यज्ञ अध्ययन, व्यापर, व्याज, खेती, श्रेष्ठ वर्णों की सेवा, भला ये सब गुण कर्म लक्षण किसी में कोई कैसे देखते ही समझेगा ? आखिर इस प्रपञ्च का सारांश यही कि किसी में कोई जाति नहीं रहने पावे । सारी दुनियां एकसी बन जाय । ऐसा न हुआ न होगा ही, इस विषय में अनेक प्रपञ्चियों ने अपना धन, बल, बुद्धि विद्या, संघशक्ति आजमा चुके, किसी से कुछ न बना, आज फिर ये आर्यसमाजी अपनी लेख शक्ति आजमाने बैठे हैं । किन्तु ऐसा करना धर्म विरुद्ध है ।

जे० पी०—कोई कहते हैं कि—"**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् । बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत । यजुः ॥** इस मन्त्र के आधार पर लोगों के दिल में जमा हुआ है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, मध्यभाग से वैश्य तथा पैर से शूद्र पैदा हुए, परन्तु यह बिलकुल असत्य है । थोड़ी देर के लिये यही मान लिया जाय तो इसमें ऊँचता नीचता कहां से लाते हो ? भगवान का सभी अंग पवित्र होता है । पैर से गंगाजी निकली ऐसा लोग मानते हैं तो फिर गंगाकी पूजा क्यों ? और उसी पैर से उत्पन्न शूद्र की अप्रतिष्ठा क्यों, कोई विशेष चिह्न ब्राह्मण में दे देते तो इतनी शास्त्रछन्दता क्यों होती ? वेद में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र का दर्जा बराबर है, शूद्र की नीचता कहीं नहीं कही गई, अगर कहीं हो तो हमारे भाई बतावें ।

खण्डन—" अगर अपढ़ आदमी इस तरह की दलील पेश करे तो कर सकता है किन्तु जो संस्कृत में दश वर्ष परिश्रम किया है, का० ती० की पदवी अपने नाम के आगे लिखता है उसकी लेखनी से यह बेजा हरकत बहुत खटकती है उपरोक्त यजुर्वेदीय मन्त्र में आसीत् क्रिया पैदा होने के अर्थ में नहीं है, है क्या तो '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**' जिसका अर्थ यही होता है कि ब्राह्मण मुख (मुख्य) था "**बाहू राजन्यः कृतः**" क्षत्रिय बाहुस्थानापन्न था, "**ऊरू**

तद्दस्य यद्वैश्यः" वैश्य जंघा स्थानापन्न था, "पद्भ्यां शूद्रोऽजायत" शूद्र चरण के लिये हुआ, लोग जानते है कि उपयोगिता देखकर लोग नाम रखते हैं जैसे किसी को अन्धे की छड़ी कहते हैं, किसी को नाक की बाली कहते हैं, किसी को अंगूठी की नग इत्यादि कहा करते हैं, अलङ्कार शास्त्र में इसको रूपकालङ्कार कहते हैं। जिसका लक्षण मम्मटजी ने काव्य प्रकाश में दिया है— "तद्रूपकमभेदोयं उपमानोपमेययोः" अर्थात् उपमान और उपमेयौ में जो अभेद का आरोप करना उसको रूपक कहते हैं। मतलब यह कि वैधर्म्य (चन्द्रत्व मुखत्व रूप) प्रकट रहने पर भी अत्यन्त समानता से किसी अन्य रूप को अन्य रूप में परिणत कर देना जैसे 'मुख चन्द्रः' इसी को रूपक कहते हैं, ठीक इसी प्रकार सनातन शुद्ध, निरामय, निष्कलङ्क, निराकार परब्रह्म के मुख बाहु जंघा चरण इन अवयवों की कल्पना कर मुख ब्राह्मण, बाहु राजन्य जंघा वैश्य, और चरण शूद्र इन चारों जातियों का चारों प्रधान अवयवों के साथ रूपक किया गया है। अगर आपको साधर्म्य जो रूपक का हेतु है सो देखना हो तो देखिये—"सिद्धं ह्येतद्वा चिवीर्यं द्विजानां बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम्" अर्थात् वाग्बल ब्राह्मणों में और बाहुबल क्षत्रियों में सिद्ध है, इसप्रकार दो अवयवों का साधर्म्य वक्तृत्व शक्ति और संग्राम शक्ति ही हैं, इस तरह जब अल्प विचार के बाद ही श्रुत्यर्थ सामञ्जस्य सिद्ध हो जाता है फिर आपका "परन्तु यह बिलकुल असत्य है," ऐसा कथन कोई मूल्य नहीं रखता है। पहले तो जे० पी० चौधरी कहते थे कि बेद में व धर्म शास्त्र में कहीं चार वर्ण की चर्चा नहीं है, अब जब खुद धर्म शास्त्रों से चारों वर्णों का स्वरूप निरूपण कर दिया और वेद तक में चातुर्वर्ण्य के होने में प्रमाण मिला तब फिर रंग बदलते हुये लिखते हैं कि इसमें चातुर्वर्ण्य में ऊंचता नीचता कहां से लाते हो? यह आपका सवाल है दलील है, कि पैर से निकलने वाली गंगा की तो पूजा की जाती है, भगवान् के तो सभी अङ्ग पवित्र हैं, इत्यादि बेशक भगवान् के प्रत्येक अङ्ग पवित्र हैं, और भगवान् के चरणारविन्द—"निस्यन्दमान

मकरन्द सन्दोह रूपा मन्दाकिनी जगद्वन्दनीया" हैं, जबतक शूद्र शूद्र स्थान में अविकल भाव से स्थिर थे तबतक उनकी प्रतिष्ठा उसी तरह कायम थी जिस तरह कि सत्पुरुषों के चरणारविन्द की प्रतिष्ठा होती है, किन्तु जबसे आपके समान हिमायती डाक्टर ने चातुर्वर्ण्य रूप विराट् शरीर से काटकर अलग करने की कोशिश शुरू की अथवा मानसिक परिश्रम करने में नालायक साबित किया तब से स्थान भ्रष्ट होकर शूद्र अप्रतिष्ठा भाजन हो रहे हैं ? नहीं तो और क्या सबब है कि वे अप्रतिष्ठित व अपमानित हों अपने पैर में कुल्हाड़ी मारकर चंगा कौन रह सकता है ? अपने पैर को बिना पवित्र किये उच्चासन कौन पा सकता है ? इस हालत में शूद्रों के अप्रतिष्ठित होने की कल्पना आर्यसमाजियों की घर फोड़ने के लिये गोरखधन्धा है और कुछ नहीं। मुख से उत्पन्न होना या न होनो यह शङ्का समाधान आपका व्यर्थ है।

जे० पी०—"भगवान ने पशुओं में सिंह को बलिष्ठ बनाया क्या वह कभी शृगाल हो सकता है ? यदि नहीं तो फिर ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मण निकृष्ट क्यों बनजाते, सब ब्राह्मण एक समान न होकर ऊंचनीच क्यों ?

खण्डन—"पढ़िये पंचतन्त्र को '**यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते**' वाली कहानी को, फिर आपको पता लगेगा कि सिंह सदा श्रेष्ठ ही रहता है, अथवा संगति असर में पड़कर दुबला कायर भी बन जाता है, व्यर्थ की बकवादों से कागज काला क्यों करते हैं ? इस काम क्रोध लोभ अज्ञान मय संसार में जाति भ्रंश आदि भय रहते भी तो सन्मार्ग के पथिक नीतिमान बिरले ही मिलते हैं, अगर चेत्, श्रेष्ठ सदा श्रेष्ठ ही रहते तो आप ही सबों को सन्मार्ग में लगाते। उन्नति तथा अवनति प्रकृति का नियम एक अखण्ड है। चढ़ता प्रथम जो व्योम में गिरता वही मार्तण्ड हैं। क्या आप इस सृष्टि नियम को नहीं मानते हैं। सिद्धान्त की हैसियत से आपको यह नियम अवश्य मानना चाहिये।

जे० पी—"सृष्टि की आदि में सभी लोग सब काम स्वयं कर लेते थे, धीरे २ सामाजिक कार्य में इससे शिथिलता आने लगी, पढ़ने पढ़ाने का काम उनमें से कुछ लोगों के जिम्मे कर दिया गया। वे अन्य कार्यों से अलग रहे वही ब्राह्मण कहलाये। इसी प्रकार रक्षा करने वाले क्षत्रिय कहलाये। व्यापार खेती करने वाले वैश्य और सेवा कार्य करने वाले शूद्र कहलाये, इस तरह वेद के ज्ञान से उन्होंने मनुष्य समाज को चार भागों में बांट दिया, इस तरह ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये काल्पनिक नाम लोगों को दिये गये।

खण्डन—"अटकल गीता का प्रथमाध्याय शुरू हुआ जबकि सृष्टि की आदि थी तब सब लोग और सब काम कहां से आये! युद्ध, खेती, व्यापार और सामाजिक कार्य इन चारों कामों में सभी के लगे रहने से जो शिथिलता आई उस शिथिलता को किसने समझा और क्योंकर समझा? सभी की समझी हुई बात है कि जब पहले दृढ़ बन्धन रहता है वह बाद काल क्रम से या विसंयोग से शिथिल अर्थात् ढीला होता है व जो कभी दृढ़ ही नहीं बन्धा वह शिथिल क्या होगा? शिथिलता आने लगी यह वाक्य ही साबित करता है कि पहले दृढ़ता थी अर्थात् चारों वर्णों के नाम रूप वेद में मौजूद थे, जो पढ़ने पढ़ाने लगे वे ब्राह्मण कहलाये इत्यादि वाक्यों को आप इस तरह कहिये कि जो ब्राह्मण थे वे पढ़ने पढ़ाने लगे जो क्षत्रिय थे वे रक्षक बने जो वैश्य थे वे खेती व्यापार में लगे और जो शूद्र थे वे सेवक बने, अन्यथा पढ़ने पढ़ाने आदि की जिम्मेवारी देने वाला कौन और लेता कौन! देने लेने की चीज़ जाति नहीं है। अगर आपकी कही बात मानलें फिरतो एक घर में ही चार तरह की जाति मिलती, क्योंकि रुचि की विचित्रता से एक ही पिता के चार पुत्र, चार काम लेकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र बन जावे। जिस द्वीप द्वीपान्तर की तरफ़ आपकी नजर लगी है जहाँ का आप आदर्श मानते हैं, जहां पर आप नवीन जाति का प्रचार करना चाहते हैं क्या वहां ही आप एक ही परिवार में वृत्तिभेद होने और स्वभाव भेद होने पर भी जाति भेद बता सकेंगे! हरगिज नहीं।

जे० पी०—"मनुस्मृति में लिखा है—मनुने मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वशिष्ठ, भृगु, नारद इन दस प्रजापतियों की मानसी सृष्टि की (११३४) इन्हीं दशों पुत्रोंने "**पशून मृगान् मनुष्यान्**" (११३९) पशु, मृग, मनुष्य इत्यादि स्थावर जंगम की सष्टि की। इसमें मुख से उत्पत्ति कहीं नहीं लिखी, आप प्रथमाध्याय के १ से ४१ श्लोक तक जो सष्टि के विषय में है पढ़जाइये कहीं भी मुख से उत्पत्ति नहीं मिलेगी। मनुने प्रजापतियों को बनाया, इन्होंने सष्टि रची अतः मुख से पैदा होने की बात गायब हो गई।

खण्डन—सृष्टि की कथा मनुजीने लिखी, किन्तु क्या क्यो लिखा सो भी तो समझिये। यों तो शुरू से सृष्टि की उत्पत्ति, दिन, रात, मास, संवत्सर, ब्राह्म-मूहूर्त से शयनकाल कर्तव्य नित्य नैमितिक, काम्य, आचार, चारों आश्रम चारोंवर्ण की कर्तव्य क्रियायें और अन्त में सर्व भूतों में आत्मौपम्प्रदृष्टि, परमब्रह्म पुरुष तत्व आदि कहा है। यह तो हम सिंहावलोकन से कहते हैं, खास मनुजी की ही उक्ति में सुने कि उन्होंने क्या क्या कहा—"जगत् की उत्पत्ति, षोडश संस्कार विधि, ब्रह्मचर्यादिव्रत, गुरु आदिओं की उपासना, स्नातक विधि, (अ.१।१११) विवाह विशेष का लक्षण, महायज्ञ विधान, शाश्वतिक श्राद्धविधि, (अ.१।११२) जीविकोपाय, स्नातकव्रत, भक्ष्याभक्ष्य, शौच, द्रव्यशुद्धि, (अ.१।११३) स्त्री धर्म योग, वानप्रस्थादि तपस्याविधि, मोक्ष, सन्यास, राजधर्म, व्यवहार (अ.१।११४) वैश्यधर्म, शूद्रधर्म, संकीर्ण जातिधर्म, आपद्धर्म, चारों वर्णों काप्रायश्चित्त, (अ.१।११५) देहान्तर गमन जो उत्तम मध्यम अधम कर्म के चलते होता हैं, आत्मज्ञान विहित निषिद्धकर्मोंके गुण दोषों की परीक्षा॥१॥११६॥देशधर्म, जातिधर्म कुलधर्म जो कि सनातन से होता आया है, और पाषण्ड धर्म इस पर कुल्लु कभट्ट लिखते हैं—"**वेद बाह्यगमस्समाश्रयाः प्रतिषिद्धव्रतचर्या पाषण्डं तद्योगात्पुरुषोऽपि पाषण्डः**" अर्थात् वेद विरुद्ध आगमों से निकलने वाली प्रतिषिद्ध व्रतविधि को कहते हैं 'पाषण्ड' उसके योग से पुरुष भी कहाता है 'पाषण्ड' और गण वणिक गण इन सबों के धर्मों को मनुने मनुस्मृति में कहा है अ.१। ११८) यहां भी

तो जाति धर्म साफ कहा है. अब आपके कहे १ से ४१ तक प्रथमाध्याय को ही देखते हैं। लिखा है—"लोकानां तु विवृध्यार्थं मुखबाहूरुपादतः। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ १ । ३१ ॥ अर्थात् लोगों की वृद्धि के लिये मुख, बाहु, ऊरु और चरण से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों को उत्पन्न किया, अब आप ही कहिये कि मुखादि से उत्पत्ति मिली या नहीं ? मुख से पैदा होने की बात गायब हुई या सिद्ध हुई ? क्यों व्यर्थ में सूर्य प्रकाश में पहाड़ जैसे दिख पड़ने वाली जातियों को लुप्त करने के लिये लोगों की दृष्टि पर आप कुतर्क व कुवचन रूप धूलि प्रक्षेप करते हैं ? क्यों अपनी विद्या को अविद्या में परिणत करते हैं ? क्यों इस तरह धार्मिक व जातीय विधियों में प्रलय का दृश्य खड़ा करते हैं ? बेचारी अपढ़ जातियों में अश्रद्धा, बुद्धि भेद क्यों पैदा करते हैं ? अगर परमात्माने आपको लेखन शक्ति दी है तो आज आप शिथिल पड़ी हुई धार्मिक सामाजिक विधियों में नवजीवन लाइये। जैसे ग्रीष्म ऋतु के प्रचण्ड मार्तण्ड की कठिन किरणों से मुरझाई द्रुमलतादियों में प्रकृति देवी नवजीवन प्रदान करती है न कि उखाड़ फेंक देती है ठीक इसीतरह आप भी विधर्मियों के आक्रमणों से अवनति दशा में आई इन जातियों के लिये जीवनौषधियां दीजिये किन्तु इन्हें जड़ मूल से उखाड़ फेंकने का कुत्सित प्रयास क्यों करने चले हैं ? ये पंक्तियां हम सुहृद्भाव से लिख रहे हैं किन्तु शत्रुभाव से नहीं। हम रुष्ट नहीं हैं क्योंकि हमें तो आपकी कृपा से शब्द ब्रह्म की आराधना करनी पड़रही है जो कि हमारी कृतकृत्यता है। भला आप ही कहिये कि जो आप १ से ४१ तक श्लोक लोगों को पढ़ने को कहते हैं सो आपने खुद पढ़लिये ! यदि हां, तो—"कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत्। द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥१॥२६॥ अर्थात् कर्मों के-जात्याश्रित कर्मों के विवेक करने के लिये यज्ञादि धर्म और ब्रह्महत्यादि अधर्म को अलग २ कहा. धर्मफल सुख व अधर्म फल दुःख रूप परस्पर विरोधी द्वन्द्वों से इन प्रजाओं को युक्त किया ॥२६॥ पंचमहाभूतों की जो विकारी पंचतन्मात्रायें कहीं जाती हैं,

इन पंचतन्मात्राओं से ये सारी सृष्टियां उत्पन्न होती हैं ॥२७॥ प्रभुने शुरू में जिसे जिस कर्म में लगाया वह जीव खुद सृजा जाता हुआ बारंवार उसी कर्म में लगा ॥२८॥ हिंसामय, दयामय, कोमल, कठिन, धर्म, अधर्म, झूठ सांच जो जिसके लिये सृष्टि की आदि में प्रभु ने बनाया, उसने उस कर्म को ग्रहण किया ॥२९॥ इसी बात में दृष्टान्त देते हैं—जैसे ऋतु पर्यायों में ऋतु वसन्तादिक अपने २ चिन्हों को स्वयं धारण करते हैं ठीक ऐसे ही जीव अपनी जाति धर्म कर्मों को ग्रहण करते हैं ॥३०॥ क्या आपने इन उपरोक्त २६ से ३० तक श्लोकों को नहीं पढ़े। अगर पढ़े तो यहां साफ लिखा है कि अनादि सृष्टि चक्र में अनाद्यविद्या के चलते जीवों को अपनी जाति, अपने धर्म, अपने कर्म ग्रहण करने पड़ते हैं, क्या आपने कर्णार्जुन संवाद में कर्ण की उक्ति—**सूतो वा सूत पुत्रो वा रथकारो भवाम्यहम्। देवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं हि पौरुषम्** ॥ इसको नहीं देखी। यहां तो कर्णने साफ कह दिया कि किसी जाति में जन्म लेना दैवाधीन बात है और पुरुषार्थ देखना हमारा स्वाधीन है। यहां तो कर्णने अपनी सफाई यह नहीं दिखाई कि गुण कर्म को स्वीकार कर हम भी क्षत्रिय हैं। अतएव आपकी गुणकर्माश्रित वर्णवाली वाहियात बात है।

जे० पी०। भागवत—**पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः। ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत** ॥ यहां साफ लिखा है कि ब्राह्मण मुख से पैदा नहीं हुआ।

खण्डन—जिन्हें थोड़ा भी संस्कृत आता है सो समझें कि क्या उपरोक्त भागवत श्लोक का 'ब्राह्मण मुख से पैदा नहीं हुये' यही साफ अर्थ है। जिसे झूठ बोलने की छूह है वह चाहे सो कहे। क्या भागवत में यह नहीं लिखा है कि—**प्रणोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि। स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्** ॥ इस श्लोक का अर्थ संस्कृतज्ञ कर लेंगे। हमें तो 'प्रादुरभूत किला-

स्थतः, इस पद का अर्थ जे० पी० चौधरी से पूछना है कि मुख से प्रकट होना अर्थ है या नहीं ? अगर है तो आप व्यर्थ प्रलाप क्यों करते हैं। आप **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, पुरुषस्य मुखं ब्रह्म, क्षत्रमेतस्य बाहवः** इन सब वाक्यों के अर्थों को समझते हुए हृदय में श्रद्धा रखिये और अनादि सृष्टि के कर्ता अनन्त शक्तिमान् परमात्मा का **'यतो वाचो निवर्त्तयन्ते, अप्राप्य मनसा सह'** इस सामर्थ्य की ओर ध्यान रखिये, फिर आपको अचम्भा में नहीं पड़ना पड़ेगा। श्रुति, स्मृति, पुराण, प्रतिपादित सृष्टि कथा की संगति आप विना उस ईश्वरीय अनन्त शक्ति के नहीं लगा सकते हैं अगर लगा सकते हैं तो कहिये कि हर एक कार्य में कर्तृत्व, निमित्त, उपादानादि अनेक विध कारणत्व की आवश्यकता पड़ेगी, इधर--**एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन। नासदासीत्, नोसदासीत् केवलं तमएवासीत्॥** न सत् था, न असत् था, था क्या तो, केवल अन्धकार था, इसी अर्थ को मनु कहते हैं—**आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यम विज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः** ॥ १।५ ॥ अर्थात् यह सारी सृष्टि अज्ञात थी क्योंकि कोई लक्षण न था, न तर्क की गुंजायश थी, अथवा न ज्ञान का कोई साधन था, एकदम अन्धकार मय था, इस हालत में क्या हुआ ! यह एक समझने की बात आगे आती है, इसी श्लोक पर शंका हुई कि मुनि लोगों ने प्रश्न किया कि–हे भगवन् ! (सर्ववर्णानाम्) सर्व वर्णों अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्रों के और (अन्तरप्रभवाणां) अनुलोमप्रतिलोम संकरों के धर्मों को क्रम से कहिये। १। २। इस तरह प्रश्न करने पर मनु महाराज ने सृष्टि की कथा क्यों कहने लगे ? इस शंका के समाधान टीकाकारों ने किया है जिसमें मेधातिथि लिखते हैं कि इससे इस शास्त्र की महता सिद्ध होती है। ब्रह्म सारूप्य से लेकर स्थावर योनिपर्यन्त सभी गतियां धर्म व अधर्म निमित्त से होती हैं जैसे कि खुद मनुजी कहेंगे कि–**तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।** अर्थात् कर्मजन्य अनेक तरह के अन्धकारों से ये चराचर जीव ढके हैं। ऐसे

ही—"एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा, धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः" अर्थात् अपने ही हृदय से धर्म के चलते व अधर्म के चलते उच्च नीच जातियां व विद्वत्ता मूर्खता, एवं श्रीमन्ती दरिद्रता, स्वास्थ्य अस्वास्थ्य, सबलता, दुर्बलता, सुरूपता कुरूपता आदि जीवों की दशायें देखकर हमेंशा धर्ममें जी लगाना चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि अनुपम अभ्युदय का साधन धर्म है और अतुल परिताप का कारण अधर्म है। उस धर्माधर्म का स्वरूप समझाने वाला यह शास्त्र अवश्य पठनीय है। इस विवरण से स्पष्ट होता है कि जाति के आश्रय में धर्म है, तभी तो धर्म पूछने पर जाति व सृष्टि कथायें कहीं जाती हैं। गोविन्दराजने भी यही समाधान दिया है। इस प्रकार जो संसार कुछ न था वह कहां से आया और किस तरह आया ? यह प्रश्न खड़ा रहा, जगत् का कारण होना ही ब्रह्म का लक्षण है, तभी तो व्यास सूत्र है। कि—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्र के बाद दूसरा सूत्र है "जन्माद्यस्य यतः" अर्थात् इस जगत् की जिस ब्रह्म से उत्पत्ति रक्षा प्रलय है। इस बात को श्रुति भी कहती है—"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति"। इस तरह संसार की उत्पत्ति आदि के निमित्त भूत ब्रह्म का कथन किया जाता है। मतलब यह कि जैसे अन्धेरे घर में घट यह आदि नहीं देखे जाते अथवा वट बीज में वट वृक्ष नहीं देख पड़ता है वैसे ही प्रलयकाल में सूक्ष्मरूप से प्रकृति में लीन यह संसार अदृश्य व अज्ञेय था, और प्रकृति भी ब्रह्मरूप में छिपी थी, अतएव अप्रज्ञात अलक्षण अप्रतर्क्य अविज्ञेय आदि विशेषण देकर कहा गया है कि था, अर्थात्—"तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्" यह छान्दोग्योपनिषत् और "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" इदं जगत्स देवासीत्। इत्यादि श्रुति प्रमाणों से ब्रह्मात्म रूप से संसार था यह सिद्ध किया जाता है। लेकिन यदि संसार था तो द्वैतापत्ति हो जाती है, नहीं था तो "कथम् असतः सज्जायेत" यह शङ्का होती है, इस हालत में उस

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' की अनन्तता, अद्वितीयता, अविचिन्त्यवीर्यता आदि दिव्य विभूती माननी ही पड़ेगी, फिर जिसकी-" एकोऽहं बहुःस्याम् " इस इच्छा से यह मही; महीधर, महीरुह महार्णव आदि महत्व के कार्य होगये, उसके मुख से ब्राह्मण का होना और चरण से शूद्र का होना कौनसी ताज्जुब की बात है। सिर्फ इसी सबब पर आप एथीइज्म (नास्तिक वाद) को क्यों अपनाते हैं ?

जे. पी.-महाभारत आदि पर्व अ० ६५ ब्रह्मा के ६ मानस पुत्र हुये, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु। मरीचि के कश्यप हुए, कश्यप से सारी सृष्टि चली। ये छः मानस पुत्र थे। ये कौन जाति के कहलावेंगे ? इन छः ओं से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वंश चले हैं। इनसे जो वंश चले हैं इनको किसी जाति में नहीं गिन सकते।

खण्डन—महाभारत आदि पर्व अध्याय ६५ हमारे सामने में है, लेकिन जे० पी० चौधरी ने जिस अभिप्राय सें यह प्रकरण लिया है वह उनका अभिप्राय सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि ६३ वें अध्याय में पाण्डव कौरवादिकों की उत्पत्ति का वर्णन है। ६४ वें अध्याय में जनमेजयने वैशम्पायन से प्रश्न किया कि देवस्वरूप पाण्डवादिक ने इस भूमि पर जिस हेतु से जन्म ग्रहण किया सो हम सुनना चाहते हैं ! इस पर वैशम्पायन ने कहा कि यह रहस्य की बात जो मैंने देवताओं से सुनी है वह मैं तुम से कहता हूं—जब परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रिय रहित बना दिया तब वे तपस्या के लिये महेन्द्र पर्वत पर गये। उस समय क्षत्रिय रहित पृथ्वीपर—ब्राह्मणान् क्षत्रियांन्राजन सुतार्थिन्योऽभिचक्रमुः इससे सिद्ध होता है कि उस समय ब्राह्मण वर्तमान थे और इधर उधर छिपे हुए क्षत्रिय भी बचगये थे। जो महाभारत की ही कथा से सिद्ध है, फिर इन छः ओं से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वंश चले हैं, यह कहना मिथ्या है। हां यह सत्य है कि इस तरह अनुलोम संकर जात बहुत से कुमार व कुमारियां हुई, जिसके लिये वाक्य यह है-तेभ्यश्च लेभिरे गर्भं क्षत्रियास्ताः सहस्रशः।

ततः सुषुविरे राजन् क्षत्रियान् वीर्यवत्तरान् । कुमारांश्च कुमारीश्च पुनः क्षत्राभिवृद्धये । एवं तद्ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः ॥ जातं वृद्धं च धर्मेण सुदीर्घेणायुषान्वितम् ॥ इससे तो स्पष्ट है कि क्षत्रियों का ही जन्म हुआ। पुनः लिखा—**प्रशासति पुनः क्षत्रे धर्मेणेमां वसुन्धराम् । ब्राह्मणाद्यास्ततो वर्णा लेभिरे मुद मुत्तमाम् कामक्रोधोद्भवान् दोषान् निरस्य च नराधिपाः ॥ धर्मेण दण्डं दत्तः प्रणयन्तोऽन्वपालयन् ॥ न बाल एव म्रियते तदा कश्चिन्नराधिप । न च स्त्रियं प्रजानाति कश्चिदप्राप्त यौवनः ॥ ईजिरेच महायज्ञैः क्षत्रिया बहुदक्षिणैः । साङ्गोपनिषदान् वेदान् विप्राश्चाधीयते तदा ॥ न च विक्रीणते ब्रह्म ब्राह्मणाश्च तदानृप । न च शूद्रसमभ्यासे वेदानुच्चारयन्त्युत ॥ कारयन्तः कृषिं गोभिस्तथा वैश्याः क्षिताविह । न कूटमानैर्वणिजः पण्यं विक्रीणते तदा ॥ कर्माणि च नर व्याघ्र धर्मोपेतानि मानवाः । धर्ममेवानुपश्यन्तश्चक्रुर्धर्मपरायणाः ॥ स्वकर्म निरताश्चासन सर्वे वर्णा नराधिप । एवं तदा नरव्याघ्र धर्मो न ह्रसते क्वचित् ॥** इस सन्दर्भ को पढ़कर कौन ऐसा हृदय का फूटा होगा कि चातुर्वर्ण्य की सत्ता नहीं मानेगा।

इसी अध्याय में आगे लिखा है कि इस पूर्वोक्त प्रकार से सम्पन्न लोक में क्षत्रियों के स्थान में असुर उत्पन्न हुए। आदित्यों ने अनेक दैत्यों को मारा, ऐश्वर्य से गिरा दिया, बाद में दैत्योंने भूमि में अवतार लिया। और पृथ्वी पर भी दैवी शक्ति हासिल करने के लिये निर निराले जीवों में जन्म ग्रहण किया, उन उत्पाती असुरों के चलते पृथ्वी अपनी आत्माको धारण करने में भी असमर्थ होगई। वे दैत्य दानवगण अनेक अभिमानी मदोद्धतराजाओं के रूप में ससागरा धरा में विचरने लगे। और क्या करने लगे ? तो "**ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चैवाप्यपीडयन् । आश्रमस्थान् महर्षींश्च धर्षयन्तस्ततस्ततः**" ॥ इसके बाद पीड़ीत होकर पृथ्वी ब्रह्माजी के पास पहुंची। और लोक

पालों के समक्ष ब्रह्माजी से अपनी विपत्कथा कहने लगी । सब बातों को सुनकर ब्रह्मा बोले—"कि जिस लिये आपका आगमन हुआ है उस काम के लिये हम देवों को आज्ञा करते हैं । इस प्रकार सान्त्वना दे पृथ्वी को लौटाकर ब्रह्माजी ने इन्द्र के साथ ही देवगण गन्धर्वगणादिकों से कहा कि आप लोग अपने २ अंशों से मनुष्यों में जन्म लें, और इस तथ्य पथ्य आज्ञा को देवोंने शिरसा स्वीकार, किया इस प्रकार चौसठवां अध्याय समाप्त होता है ।

बाद में नारायण के साथ इन्द्रने पृथ्वीपर अवतार के लिये परामर्श किया । बाद में पृथ्वी में आने के लिये साथ देवों के प्रस्थान किया, और धरा पर आकर क्या किया ?—"**ततो ब्रह्मर्षिवंशेषु पार्थिवर्षिकुलेषु च जज्ञिरे राजशार्दूल यथाकामं दिवौकसः**" अर्थात् उसके बाद ब्रह्मर्षि वंश में राजर्षि वंश में अपनी २ इच्छानुसार देवों ने जन्म लिया और राक्षसों को मारकर भूभार हटाया । अब जनमेजयने प्रश्न किया कि मैं मनुष्यों का और राक्षसों का व गन्धर्वों का जन्म सुनना चाहता हूं । इस पर वैशम्पायन कहते हैं–"**ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः । मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाः प्रजाः प्रजज्ञिरे महाराज दक्षकन्यास्त्रयोदश**" ॥

किसी भी विद्वान् से यह बात छिपी नहीं है कि उपक्रम और उपसंहार से अर्थ का निश्चय होता है । तदनुसार जब ६४ वें अध्याय में जनमेजयने पूछा कि—"**य एते कीर्तिता ब्रह्मन् ये चान्येनानुकीर्तिताः । सम्यक्तान् श्रोतुमिच्छामि राज्ञश्चान्यान् सहस्रशः**"आदि पर्व अ० ६४ महा० अर्थात् हे ब्रह्मन् ! आपने जिन्हें कहा या नहीं कहा ऐसे हजारों राजाओं को (क्षत्रियों को) मैं अच्छी तरह सुनना चाहता हूं । यह प्रश्न ही साबित करता है कि श्रोता को क्षत्रियोत्पत्ति सुनना अभीष्ट है न कि चारों वर्णों की उत्पत्ति, इस प्रकरण को मैंने विस्तार पूर्वक इसीलिये रक्खा जिससे पाठक समझें कि यह प्रकरण वर्णों का पूर्ण परिचय देने वाला नहीं है किन्तु क्षत्रिय का

परिचय देने वाला है, इस बात में प्रमाण ६५ वें अध्याय के जनमेजयकर्तृक प्रश्न श्लोक भी है जैसे कि–"**देव दानव संघानां गन्धर्वाप्सरसां तथा। मानवानां च सर्वेषां तथावै यक्षरक्षसाम् ॥ ७ ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन संभवं कृत्स्नमादितः**" क्या इसमें कहीं ब्राह्मण का भी नाम है यदि नहीं तो फ़िर इसको चातुर्वर्ण्योत्पत्ति में प्रमाणतया पेश करना फिजूल है। "**कश्यपात्तु इमाः प्रजाः**" बस इसी अंश का आपने सारी सृष्टि अर्थ कर दिया। प्रजा शब्द की शक्ति क्या है। इतना सोचने का भी आपको अवकाश नहीं मिला,–"**प्रजा स्यात् सन्ततौ जने**" अर्थात् संतान व मनुष्य को प्रजा कहते हैं। सारी सृष्टि यह अर्थ कहां से आया। मरीच्यादि छः मानस पुत्रों की जाति आप जानना चाहते हैं। इस विषय में—**मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः। तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः मनु० अ० ३ श्लो० १९४** । अर्थात् हिरण्यगर्भापत्य मनुके जो मरीचि आदि पुत्र हैं उन्ही सब ऋषियों के सोमप आदि पितृगण पुत्र हैं ॥ तथा—**ऋषिभ्यः पितरो जाताः, पितृभ्यो देवमानवाः। देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनु पूर्वशः ॥ २०१ ॥** अर्थात् ऋषिगण—मरीचि आदि से पितृगण उत्पन्न हुऐ, पितृगण से देवदानव उत्पन्न हुए, और देवों से स्थावर जंगम संसार उत्पन्न हुआ। हमारा आग्रह हैं कि मनु० अ० ३ श्लोक १९२ से २०१ तक आप पढ़जाइये, आपको मालूम होगा, मरीच्यादि छः मानस पुत्रों की जाति क्या है ? अगर आप नास्तिकता से प्रश्न करते हैं फिरतो हमारा उत्तर वही कालिदासोक्त—**यमामनन्त्यात्मभुवोपि कारणं कथं सलक्ष्यप्रभवो भविष्यति** । यह पद्यांश है जो कि महादेव की जाति जिज्ञासा में जगन्माता पार्वतीजी ने कहा है । और साथ ही यह भी समझिये—**अलोकसामान्यमचिन्त्य हेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्** । आप खुद लिखते हैं कि "इन छःओं से ब्राह्मण तथा क्षत्रियवंश चले हैं" फिर आप ही लिखते हैं कि—इनसे जो वंश चले हैं इनको किसी जाति में नहीं गिन सकते । आपकी

ये बातें परस्पर बाधित हैं। अतः इनपर ऊहापोह करना व्यर्थ है। इस सन्दर्भ का निष्कर्ष यह है कि महाभारत आदि पर्व की कथा क्षत्रियवंश के विषय में है किन्तु चातुर्वर्ण्य के विषय में नहीं, यह बात जुदी है कि क्षत्रिय ब्राह्मण इन दोनों वंशों की अनुलोम संकर सन्तान स्मृतिप्रोक्त रीति से उत्कर्षता व अपकर्षता में अपनी जाति पलट सकती है। जैसे कि—"**तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षंच**" इत्यादि वाक्य लिखा है। इस विषय को साफ समझने के लिये-" **वर्णव्यवस्था** " पृ० १४ पढ़िये।

जे० पी०—फिर आदि पर्व ६६ वें अध्याय श्लोक ५-६ में लिखा है कि अङ्गिरा के बृहस्पति, उतथ्य, संवर्त ये तीन पुत्र हुए और अत्रि के अनेक पुत्र हुए। सब हीं वेदविद् शान्तात्मा महर्षि हुए। अत्रि के जो पुत्रादिक हुए वे क्या कहलावेंगे ? क्योंकि वे तो मुखादि से उत्पन्न नहीं हुए।

खण्डन—आप इसी ६६ वां अध्याय को आदि से अन्त तक पढ़ जाइये फिर आपको पता लगेगा कि इस अध्याय में सर्वजीवों की उत्पत्ति कही गई है प्रमाण के लिये—" **सम्पातिं जनयामास वीर्यवन्तं जटायुषम्। सुरसाऽजनयन्नागान् कद्रुः पुत्रांस्तु पन्नगान्। द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु विख्यातौ गरुडारुणौ॥ इत्येष सर्वभूतानां महतां मनुजाधिप प्रभवः कीर्तितः सम्यङ् मया मतिमतां वर ॥७०। ७१॥** इससे साफ ज्ञात होता है कि इस अध्याय से ब्राह्मणादि चारों वर्णों का वर्णन इष्ट नहीं है, वर्णाश्रमधर्मियों का यह हठ नहीं कि मुख से उत्पन्न होने वाला ही ब्राह्मण है और ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न होने वाले और मानस पुत्र कहाने वाले ब्राह्मण नहीं है। अगर आप ऐसा समझते हैं तो यह आपकी भूल है। क्या आपने महाभारत आदि पर्व अध्याय ६३ श्लोक ९३ से ९६ श्लोक तक अणीमाण्डव्य की कथा नहीं पढ़ी, जिसमें साफ लिखा कि—अणीमाण्डव्य महर्षिने धर्म को बुलाकर कहा, मैंने लड़कपन में एक पक्षी का बध किया है बस एक उसी पाप को मैं जानता हूं और तो कोई पाप हमें याद नहीं आता। उस छोटे से पाप

को मेरी प्रचुर तपस्या क्या नहीं जीत सकी ? सर्व भूतों के बध से ब्राह्मण वध महापाप है। इसलिये हे धर्म! पापी होने के सबब से तुम शूद्र योनि में पैदा होगे और उसी शाप से धर्म भी शूद्र योनि में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार की कथा महाभारत में हजारों हैं फिर भी आप सत्र: गुणकर्म देखकर जाति निर्माण करना चाहते हैं। ये आपकी अप्रमाणिक बातें इधर उधर के श्लोकों से सिद्ध नहीं होंगी, यह आप पक्का समझें।

जे० पी०—आदि पर्व अ० ६६ श्लोक १०। ११ में लिखा है कि दक्ष जी अंगुष्ठ से उत्पन्न हुए। इन्होंने १३ कन्यायें कश्यप को दीं, जिनसे ये सब मनुष्य हुए। कश्यप मरीची के पुत्र हैं। अतः इनको मानस पुत्र कहेंगे और दक्षजी अंगूठे से हैं इन दोनों के वंशों के योग से सारी सृष्टि हुई। फिर आप लोग कैसे कह सकते हैं कि ब्राह्मणादि मुखादि से उत्पन्न हुए ?

खण्डन—बेशक लिखा है कि—**दक्षस्त्वजायतांगुष्ठाद्दक्षिणाद भगवानृषिः। ब्राह्मणः पृथिवीपाल! शान्तात्मा सुमहातपाः॥१०॥ वामादजायतांगुष्ठाद् भार्या तस्य महात्मनः। तस्यां पंचशतं कन्याः सनवाज यन्मुनिः॥११॥ ताः सर्वास्त्वनवद्याङ्ग्यः कन्याः कमललोचनाः। पुत्रिकाः स्थापयामास नष्टपुत्रः प्रजापतिः॥१२॥ ददौ स दश धर्माय सप्तविंशतिमिन्दवे। दिव्येन विधिना राजन् कश्यपाय त्रयोदश॥ १३॥ नाम तो धर्मपत्नस्ताः कीर्त्यमाना निबोध मे। कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया तथा॥१४॥ बुद्धिर्लज्जा मतिश्चैव पत्न्यो धर्मस्य ता दश। द्वाराण्येतानि धर्मस्य विहितानि स्वयम्भुवा॥ १५॥ सप्तविंशतिः सोमस्य पत्न्यो लोकस्य विश्रुताः। कालस्य नयने युक्ताः सोमपत्न्यः शुचिव्रताः॥ १६॥ सर्वा नक्षत्र योगिन्यो लोकयात्राविधानतः। पैतामहो मुनिर्देवस्तस्य पुत्रः प्रजापतिः। तस्याष्टौ वसवः पुत्रास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्॥ १७॥** अर्थात् ब्रह्मा के छः मानस पुत्र हुए। जिनके नाम

मरिचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु थे। इन्हीं में अन्तिम क्रतुनामक पुत्र के अनेक पुत्र हुए और ब्रह्मा के दक्षिण अंगूष्ठ से दक्ष ऋषि उत्पन्न हुए और ब्रह्मा के वांये अंगुष्ठ से दक्ष ऋषि की भार्या उत्पन्न हुई। दक्ष ऋषिने इसी स्त्री में ५सौ कन्यायें उत्पन्न कीं, इन कन्याओं को नष्ट पुत्र होने के सबब से प्रजापतिने गोद रखलिया। इन कन्याओं में से धर्म को दश लड़कियां दीं, चन्द्रमा को सत्ताइस लड़कियां दी और कश्यप को तेरह लड़कियां दीं। जिनके नाम क्रम से कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि लज्जा, मति थे। इन दश कन्याओं को ब्रह्माने धर्म के द्वार बनाया। जो सत्ताइस चन्द्रमा को दी गईं, वे सत्ताइस नक्षत्र युक्ता हुईं। जिनसे लौकिक कार्य चलते हैं। पैतामह मुनि के पुत्र प्रजापति हैं और प्रजापति के आठ वसु नाम के पुत्र हैं जिनका विस्तार मैं कहता हूं ॥ १७ ॥ धर, ध्रुव, सोम, अनल, अनिल, नल, प्रत्यष, प्रभास ये आठों वसुओं के नाम हैं। इन्हींमें आठवें वसु प्रभास से वृहस्पति की बहनमें **विश्वकर्मा महाभागो जज्ञे शिल्प प्रजापतिः। कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः ॥ २८ ॥ भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः। यो दिव्यानि विमानानि त्रिदशानां चकार ह ॥ २९ ॥** अर्थात् शिल्प कर्मों के आदि आचार्य हजारों शिल्पों को करने वाले, सब प्रकार के भूषण बनाने वाले विश्वकर्मा नाम के देवताओं के वढ़ई उत्पन्न हुए। जिन्होंने देवताओं के अनेक दिव्य विमान बनाये। इस पर विचार किया जा सकता है कि यह वर्णन कोई चातुर्वर्ण्य का विधायक नहीं है। अथवा न चातुर्वर्ण्य का लोप ही करने वाला है। यहां तो मुख्य महाभारत के चरित्र नायकों की बातें हैं। उन्हीं की उत्पत्ति का यह प्रकरण है, इससे ब्राह्मण वंश व क्षत्रिय वंश का मिश्रण क्वचित् कारण वंश आया है, जो आपद्धर्मान्तर्गत है उस से किसी बात का निश्चय करना यह विद्वानों के लिये अवांछनीय है।

जे० पी०—ब्रह्मा के हृदय से भृगु इनसे शुक्राचार्य और च्यवन हुए······ यह वंश भी ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न नहीं हुआ, इस हेतु इसको भी ब्राह्मण जाति नहीं कह सकते।

खण्डन—आप भले ही नहीं कहें, किन्तु सारी दुनियां जानती है कि वे ब्राह्मण थे, प्रमाण देखिये—**योगाचार्यो महाबुद्धिर्दैत्यानामभवद्गुरुः । सुराणां चापि मेधावी ब्रह्मचारी यतव्रतः ॥ ४३ ॥** यहां पर टीकाकार लिखते हैं—**चापी व्यस्तौ सुराणामपि च गुरुरिति सम्बन्धः । देवानां गुरुरेव योगाचार्यो योगबलेन कायद्वयं कृत्वा देवानां मप्याचार्योऽभवत् । तथा च मैत्रायणीये समाम्नातम्, बृहस्पति र्हि शुक्रो भूत्वा इन्द्रस्याऽभयाय असुरेभ्यः क्षयाय इमामविद्या मसृजत् इति ।** इसका स्पष्ट आशय है कि एक ही व्यक्ति योग बल से अपने शरीर को द्विधा विभाग करके आधे से सुरगुरु बृहस्पति बने और आधे से असुर गुरु शुक्राचार्य बने, कहिये जिस शख्स में इतना योग बल था उसकी जाति के बाबत में सन्देह क्या ? अब रही मुखादि से सृष्टि की बात, सो आप मनुमहाराज के—**उत्तमाङ्गोद्भवाज्जैष्ठयात् ब्रह्मणश्चैव धारणात् । सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ १ । ९३ ॥** अर्थात् उत्तम अंग से उत्पन्न होने के कारण सर्व श्रेष्ठ होने के कारण और वेद पढ़ने के कारण सारी दुनियां में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥ १ ॥ ९३ ॥ **तं हि स्वयम्भुः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वा दितोऽसृजत् । हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥१।९४॥** अर्थात्—ब्रह्मा ने तपस्या करके शुरू से अपने मुख के द्वारा इन ब्राह्मण की सृष्टि की, किसके लिये, तो—**हव्य देवद्रव्य कव्य पितृद्रव्य** के भागी बनने के लिये और सारी सृष्टि की रक्षा के लिये ॥ ९४ ॥ **यस्यास्येन सदा श्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः । कव्यानि चैव पितरः किं भूत-मधिकं ततः ॥ ९५ ॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजी-विनः बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९६॥** इत्यादि वचनों की क्या कीमत करते हैं ? आपको तो चातुर्वर्ण्य को गड़बड़ाध्याय में डुबाना है । लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं । महाभारत के जिस आदि पर्व का आप प्रमाण दे रहे हैं उसी आदि पर्व के ६७ वें अध्याय के अन्तिम श्लोकों पर

आप नजर दें—इति देवासुराणां ते गन्धर्वाप्सरसां तथा । अंशावतरणं राजन् क्षत्रियाणां च कीर्तितम् । ये पृथिव्यां समुद्भूता राजानो युद्धदुर्मदाः महात्मानो यदूनां च ये जाता विपुले कुले ॥ ६१ । ६२ ॥ अर्थात् देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरस, राक्षस और जो पृथ्वी पर युद्धोन्मत्त राजा हुए उन सबों का मैं अंशावतरण कह चुका हूं ॥ यहां यह तो नहीं कहा गया कि चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति कह चुका हूं ।

जे० पी० वाल्मीकी रामायण आरण्य काण्ड में लिखाहै—मनुर्मनुष्यान् जनयत् काश्यपस्य महात्मनः । ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥ कश्यप की स्त्री से मनुनें मनुष्यों को उत्पन्न किया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को मनुने ही उत्पन्न किया है । यहां स्पष्ट मैथुनी सृष्टि का वर्णन है इससे भी सिद्ध होता है कि मुखादिक से ब्राह्मणों की उत्पत्ति नहीं हुई है ।

खण्डन—यहां अगर अध्याय संख्या देदी जाती तो क्या बिगड़ता ? लेकिन जिन्हे आंख में धूल झोंकनी है वे अध्यायाङ्क, श्लोकाङ्क क्यों दें अस्तु, यह "मनुर्मनुष्यान्" श्लोक चौंदहवां अध्याय का २९ वां श्लोक है यहां कथा यह है कि पञ्चवटी को जाते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने एक भयङ्कर शरीर वाले गृद्ध को पाया । रामलक्ष्मण दोनों भाइयों ने पूछा कि आप कौन हैं ? इस पर गृद्ध ने कहा कि आप हमें अपने पिता का प्रिय मित्र पक्षी समझें । रामने अपने पिता का प्रिय मित्र मानते हुए बहुत सत्कार किया और नाम व कुल पूछा, इस पर गृद्ध ने अपना कुल नाम और सर्वजीवों की उत्पत्ति कही । ५ ॥ पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोभवन् । तान्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥ ६ ॥ कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम् । शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ७ ॥ स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबल । पुलस्त्यश्चांगिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा ॥ ८ ॥ दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव । कश्यपश्च महातेजास्ते-

यामासीच्चपाश्रिमः ॥९॥ प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुताः। षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥ १० ॥ कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः अदितिं च दितिं चैव दनूमपि च कालकाम् ॥ ११ ॥ ताम्रां क्रोधवशां चैव मनुं चाप्यनलामपि। तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ पुत्रान् त्रैलोक्यभर्तॄन् वै जनयिष्यथ मत्समान् । अदितिस्तन्मना राम दितिश्च दनुरेवच ॥ १३ ॥ कालका च महाबाहो शेषास्त्वमनसोऽभवन् । अदित्यां जज्ञिरे देवास्त्रयस्त्रिंशदरिन्दम ॥ १४ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च परन्तप। दितिस्त्वजनयत्पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियं व सुमती पुरासीत्सवनार्णवा । दनुस्त्वजयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिन्दम ॥१६॥ नरकं कालकं चैव कालकापि व्यजायत। क्रौञ्चीं भासीं तथाश्येनीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम् ॥१७॥ ताम्रा तु सुषुवे कन्याः पञ्चैता लोकविश्रुताः । उलूकाञ्जनयत् क्रौञ्ची भासी भासान् व्यजायत ॥ १८ ॥ श्येनीश्येनांश्च गृध्रांश्च व्यजायत सुतेजसः। धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः ॥१९॥ चक्रवाकांश्च भद्रं ते विजज्ञे सापि भामिनी । शुकी नतां विजज्ञे तु नतायां विनता सुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशा राम विजज्ञे प्यात्मसंभवा। मृगींच मृगमन्दांच हरीं भद्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातङ्गीमथशार्दूलीं श्वेतांच सुरभीं तथा । सर्वलक्षणसम्पन्नां सुरसां कद्रुकामपि ॥ २२ ॥ अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम । ऋक्षाश्च मृगमन्दायाः सृमराश्चमरास्तथा ॥२३॥ ततस्त्विरावतीं नाम जज्ञे भद्रमदासुताम्। तस्यास्त्वैरावतः पुत्रो लोकनाथो महागजः ॥२४॥ हर्यश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तपस्विनः। गोलांगूलांश्च शार्दूली व्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥ २५ ॥ मातंग्यास्त्वथ मातांगी अपत्यं मनुजर्षभ। दिशा गजं तु काकुत्स्थ श्वेता व्यजय-

नयत्सुतान् ॥ २६ ॥ ततो दुहितरौ राम सुरभिर्देव्यजायत । रोहिणीं नामभद्रं ते गन्धर्वीं च यशस्विनीम् ॥ २७ ॥ रोहिण्यजनयद्गावो गन्धर्वी वाजिनः सुतान् ॥ २८ ॥ सुरसा जनयन्नागान् रामकद्रुश्च पन्नगान्। मनुर्मनुष्यान् जनयत्कश्यपस्य महात्मनः ॥२९ ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥ ३० ॥ मुखतो ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा । ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः ॥ ३० ॥

यहाँ प्रतिश्लोक के अविकल अनुवादों की आवश्यकता नहीं है। इस प्रस्ताव का आरम्भ होता है जटायु के द्वारा। जटायु कहते हैं कि—पूर्व काल में जितने प्रजापति हुए हैं, उन सबको मैं कहता हूँ आप सुनें। कर्दम, विकृत, शेष, संश्रय, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि, सर्वपश्चात् कश्यप। इनमें दक्ष प्रजापति के साठ लड़कियां हुईं, जिनमें आठ लड़कियों से कश्यप का विवाह हुआ, उन लड़कियों के अदिति दिति, दनू, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु, अनला क्रम से नाम हैं। उन आठों लड़कियों को कश्यपने कहा कि—आप लोग मेरे समान ही पुत्र उत्पन्न करेंगी, इन आठों में अदिति, दिति, दनु, कालका ये चारों लड़कियां तो कश्यप के मनलायक निकलीं, किन्तु चार बांकी लड़कियां मन लायक नहीं रहीं, अतएव पूर्व मनलायक चार पत्नियों में देव, दानव, मानव आदि समञ्जस सन्तान हुई और अन्यमनस्क चार पत्नियों में स्थलचर, जलचर, पक्षीगण सन्तानें हुईं, इसी कोटि में भालु, सिंह, व्याघ्र, बन्दर, दिग्गज, गज आदि हैं। इसी वर्णन में २८ श्लोक खतम हैं। २८ वें श्लोक में है—**मनुर्मनुष्यान् जनयत्कश्यपस्य महात्मनः** इस अंश का अर्थ साफ है कि महात्मा कश्यप की स्त्री मनु नाम वाली ने मनुष्यों को उत्पन्न किया, यह मनु नामवाली सातवीं स्त्री कश्यप की है जो उपरोक्त श्लोक और उसके अनुवाद में साफ है जिन्हें पढ़ना हो वे पढ़लें। यहां पर जे० पी० चौधरी का—'कश्यप की स्त्री से मनुने मनुष्यों को उत्पन्न किया', यह अनुवाद

लज्जाजनक हैं, अब विचारणीय बात यह है कि ब्राह्मणादि की उत्पत्ति मुखादि से हुई या नहीं ? इसमें **मुखतो ब्राह्मणा जाता**, इस ३० वें श्लोक से दुनियां समझेगी कि मुखादि से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति जरूर है, क्योंकि जिसी वाल्मीकीय रामायण के प्रमाण से आप मुखादि उत्पत्ति को बाधित करते थे, उसी वाल्मीकीय रामायण से श्रुतिप्रमाण के साथ सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणादि मुखादि से ही उत्पन्न हैं। विशेष लिखना व्यर्थ है हमारा कहना सिर्फ यही है कि श्रुत्यर्थ करना कठिन काम है आप्तों को ही इस विषय में अधिकार है दूसरों को नहीं, इस स्थिति में दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी लोग मानते हैं कि मुखादि से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति नहीं हुई और बाल्मीकिजी लिखते हैं—**मुखतो ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियाः स्मृताः। ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः॥** अर्थात् मुख से ब्राह्मण, हृदय से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हुए, यह श्रुति कहती है अब यहाँ पाठकों की खुशी है कि वाल्मीकि मुनि की बात माने अथवा जे० पी० चौधरी की इसमें सिफारिश नहीं, किन्तु श्रद्धा चाहिये विशेष लिखना फिजूल है।

जे० पी०—उत्तर काण्ड के अ० ३० के १९। २० श्लोक में लिखा है, ब्रह्माजी इन्द्र से कहते हैं हे अमरेन्द्र! मैंने अपनी बुद्धि से ऐसी मानसी सृष्टि रची कि सब ही एक वर्ण के उनकी एकही भाषा थी, एक ही रूप था, दर्शन व लक्षण में कोई भेद न था, इससे सिद्ध है कि आदि सृष्टि में मनुष्य एक समान थे। मुखादि से सृष्टि नहीं हुई, कर्म से वर्ण बनते गये।

खण्डन—उत्तरकाण्ड का प्रसंग इस प्रकार है—जब महेन्द्र को मेघनाथ ने जीत लिया, तब ब्रह्मा के साथ सब देवगण लंकापुरी में गये। वहां पर अपने परिवारों के साथ बैठे हुए रावण से आकाशस्थित प्रजापति बोले-वत्स रावण! तेरे पुत्र के संग्राम को देख मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, जहां तक मैं समझता हूँ शौर्यौदार्य में तुम्हारा पुत्र तेरे ही समान है अथवा विशेष है आपने तो अपने बलसे तीन लोक जीत लिये, अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, इसलिये मैं आप दोनों पिता पुत्र

के ऊपर प्रसन्न हूँ, आजसे आपका लड़का इन्द्रजित् इस नाम से प्रख्यात होगा, जिस इन्द्र के चलते सभी देवलोक तुम्हारे अधीन हैं, उस इन्द्र को तुम शीघ्र छोड़दो। इन्द्र के छुटकारे में देवताओं को और क्या देना चाहिये सो भी कहो, इस पर इन्द्रजित् ने कहा कि अगर इन्द्र को छुड़ाना है तो हमें अमर बना दीजिये, इस पर इन्द्र ने कहा इस दुनियां में किसी जीव को अमरत्व नहीं है, इस बात को सुन कर मेघनाद ने कहा—हमारा नियम है कि संग्राम में विजय चाहता हुआ मैं रणाङ्गण में जाने से पूर्व हव्य मन्त्रों से वलि को तृप्त करता हूं; उस वक्त सुसज्ज सूर्य रथ हमारे लिये आवे, उस पर बैठने के बाद मैं अमर बनूंगा, ऐसा हमें वरदान है। साथ ही अगर विना हवन यज्ञ समाप्त किये मैं लड़ने जाऊँ तो मेरा नाश होगा। तपस्या से तो अमर सभी बनते हैं किन्तु मैं बल से अमर बनना चाहता हूं। इस पर प्रजापति ने स्वीकार किया, इन्द्र छूट कर स्वर्ग गए, लेकिन छूटने पर भी चिन्ताचक्र में उनका चित्त पड़ा रहा, उन्हें चिन्तित देखकर प्रजापति बोले—आपने पूर्वकाल में कौनसा पाप किया है? (जिससे चिन्तातुर बनना पड़ता है) हे अमरेन्द्र! मैंने अपनी बुद्धि से ऐसी प्रजा बनाई जो—"**एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च नित्यशः**" अर्थात् समान कान्ति वाली समान भाषा वाली और समान आकार वाली थी, यहां पर "**एकवर्णा**" यह जरा सन्देहास्पद है क्योंकि वर्ण कान्ति और जाति दोनों अर्थों में है, किन्तु यहां टीकाकार लिखते हैं—"**वर्णो देहकान्तिः। एकविधदेहकान्तयः**" इसका स्पष्ट आशय एकवर्णाः—समान कान्ति यही है। क्योंकि शक्तिग्राहिका विवृति भी मान गई है। आगे लिखा है कि—"**तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपिवा। ततोऽहमेकाग्रमनाः ताः प्रजाः समचिन्तयम्॥ २०॥ सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे। यद्यत्प्रजानां प्रत्यंगं विशिष्टं तत्तदुद्धृतम्॥ २१॥**" अर्थात् उन प्रजाओं की कोई विशेषता न थी, इसलिये एकान्त बैठकर प्रजा के लिये विशेष विचार किया, और एक स्त्री बनाई, प्रजाओं के हर एक अङ्गों में

जो समानतायें थीं उसे हटाया, क्या इस उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि आदि सृष्टि में मनुष्य एक समान थे, और आज नहीं हैं, सीधी सी बात है कि समानता विषमता तो एक जाति से दूसरी जाति में और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में सिद्ध ही है ? किन्तु ये समानतायें या विषामतायें कभी मोटी निगाहों से मालूम होतीं हैं और कभी बारीक निगाहों से, कारीगर को अखतियार है उसमें सुधार करे। उस सुधार को ही कोई नवीन बनाना कहे तो यह कहने वाले की गलती है, इतनी तो आदि सृष्टि की बात माननी ही पड़ेगी कि मनुष्यों की संख्या और जातियों की संख्या आजकी सी न होगी किन्तु साथ २ यह कहना कि जाति नहीं थीं, आंखें नहीं थी, नाक न थी, यह एकदम भोलापन है। यह कहना कि—"कर्म से वर्ण बनते गये" गलत है। मनुष्य व जाति ये दोनों दूध, घृत, शरीर प्राण के समान बने हैं। जो नवीन २ वर्ण बनते गये वे सब कुछ तो धर्म शास्त्र में दर्ज हैं बाकी उसी रीति से समझने योग्य हैं, अन्यथा अगर वर्ण कर्माश्रित होते तो कर्म की विचित्रता व अनेकता से वर्णों में भी चार ही संख्या मौलिक हरगिज नहीं होती, इस परामर्श को हम मर्मज्ञों की मर्मज्ञता पर ही रहने देते हैं।

जे० पी०—फिर भागवत तीसरा स्कन्ध अ० १२ श्लोक २३। २४। २७ में लिखा है—ब्रह्मा की गोदी से नारद, अंगूठे से दक्ष, प्राण से वशिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से क्रतु ॥ २३ ॥ नाभि से पुलह, कर्ण से पुलस्त्य, मुख से अंगिरा नेत्रों से अत्रि, मन से मरीचि पैदा हुए। यहां अंगों से वर्णन हैं। परन्तु ये सब ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। इनकी प्रतिष्ठा ऋषियों में है। आप इन्हे ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कुछ भी न कह सकेंगे। ये प्रजापति मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि इनमें शूद्र कौन हैं ? और दशों में किसकी सन्तान शूद्र हुई। प्रत्युत दशों ब्राह्मण ही के नाम से पुराणों में उक्त हैं। इन्हीं सबों से सब वर्ण उत्पन्न हुए हैं अतः भागवत से भी मुखादि से उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती।

खण्डन—भागवत से भी मुखादि से उत्पत्ति सिद्ध होती है। भागवत तृतीयस्कन्ध बारवां अध्याय श्लोक २३ । २४ । २७ ये हैं—" **उत्संगान्नारदो जज्ञे दक्षोंगुष्ठात्स्वयं भुवः । प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥ २३ ॥ पुलहो नाभि तो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः । अंगिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिः मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २४॥ धर्मस्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् । अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥ २५ ॥ हृदिकामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधोरदच्छदात् आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥ २६ ॥ छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्या पति प्रभुः । मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥ २७ ॥** यहां पर २३ । २४ श्लोकों का अर्थ आपके लिखानुसार ही है। आगे २५ वां श्लोक का अर्थ यह है कि—दाहिने स्तन से धर्म उत्पन्न हुए जहां स्वयमेव नारायण विराजते हैं । मृत्युलोक के लिये भयङ्कर ऐसा अधर्म पीठ से उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ हृदय में काम उत्पन्न हुआ, भौयें से क्रोध और नीचे की होठ से लोभ पैदा हुआ, मुख से वाक् मेढ़्रसे सिन्धु, पायुसे निऋति उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ छाया से कर्दम पैदा हुआ, इस प्रकार विश्वकर्ता के मनसे व देहसे यह सारी दुनियां उत्पन्न हुई ॥ २७ ॥ यहां अङ्गों से भी उत्पत्ति का वर्णन है व मनसे भी ये सब ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाते हैं और ऋषियों में प्रतिष्ठा भी पाते हैं, इसलिये हम इन्हें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों में कुछ भी नहीं कह सकेंगे इसमें सबब क्या ? आपके पास में तो कोई प्रमाण ऐसा नहीं है जिसके बल पर आप हमें ब्राह्मण कहने से रोक सकें। जो भागवत का प्रमाण ऊपर आपने रखा है उसमें तो साफ लिखा है कि—"**मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत्** " अर्थात् ब्रह्मा के मन से और देह से यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई । क्या आप देह को किसी एक ही देह भाग में सीमित समझते हैं ? यदि हां, तो यह आपकी भूल हैं, देह तो मुख बाहु उरु जंघा सभी समुदायको ही कहते हैं। इस स्थिति में मुख जात ब्राह्मण, बाहु जात क्षत्रिय, उरु जात वैश्य;

चरण सम्भूतं शूद्र समझने में आपको आपत्ति क्या है ? आप जो मानस पुत्रों के साथ चातुर्वर्ण्य का समन्वय चाहते हैं यह आपका कुतर्क है, मानस पुत्रों के ब्राह्मणत्व स्वीकार करने में आपको सन्देह ही क्या ? क्या मुख जात से मनोजात की योग्यता कम होती है। कम से कम इतना तो विश्वास रखें कि मनोयोग से ही महत्वा मुखका भी है। मानस पदार्थ ही मौखिक और मौखिक पदार्थ ही मानस कहाता है बहुधा मानस प्रत्यत्न मौखिक प्रयत्न के अधीन ही रहता है इस स्थिति में हम सब भी उन मानस पुत्रों को ब्रह्मर्षि कहते हैं और आप भी कहें। सच बात तो यह है कि चातुर्वर्ण्य के वर्णन को सिद्धान्त रूप में स्मृतिग्रन्थों से आप जानने की चेष्टा करें। पौराणिक कथानकों से आप गड़बड़ाध्याय में न पड़ें, मुखादि से उत्पत्ति तो भागवत के—**सरस्वती प्रादुरभूत् किलास्यतः।** इस श्लोक से ही सिद्ध होती है, इसके अलावे श्रुति स्मृति पुराणों से सिद्ध है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख, बाहु, उरु, चरण से हुई है, इसपर आपका विश्वास नहीं है तो यह आपकी नास्तिकता है, किन्तु यह आपका यथार्थ ज्ञान नहीं कहा जा सकता है।

जे० पी०—इस प्रकार अनेक प्रमाण पुराणादि से दिये गये, परन्तु कहीं भी मुखादि से उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती, अतः मुखादि से उत्पत्ति मानना केवल मूर्खता है। क्या कोई सनातनी पण्डित इसे अन्यथा कर सकता है ?

खण्डन—**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**, इत्यादि श्रुति प्रमाण रहने पर और—**मुखतो ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियाः स्मृताः। ऊरूभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः॥** यह श्लोक वाल्मीकिय रामायण अरण्यकाण्ड १४ अध्याय का ३० वां श्लोक के रहते कौन कह सकता है कि मुखादि से ब्राह्मण की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती। हरतरह से विचार करने पर जो बात सिद्ध होती है, उसके लिये सिद्ध करने वाले को ही मूर्ख कहना हमारी समझ से विज्ञता नहीं कही जा सकती है, वरन निरी मूर्खता है। सनातनी पण्डित के लिये तो सर्वथा मुखादि से चातुर्वर्ण्य की सृष्टि प्रमाण सिद्ध ही

हैं। रही बात यह कि आप लोगों को समझा सकते या नहीं ? इसका उत्तर साफ है कि सनातनी पण्डितों के सिर्फ समझाने से ही क्या होगा ! आप लोगों में जिज्ञासा, श्रद्धा, सहानुभूति आदि साधन भी तो हों, अनुभव कह रहा है कि आप लोग सत्यान्वेषी नहीं हैं आप एक मजहब के उपासक हैं, जो कि आप लोगों की निरी कल्पना हैं, इसी बनावटी मजहब के मार्ग में जो आर्यसभ्यता आपको बाधक जंचती है उसे आप जड़ से उखाड़ देना चाहते है, आपके स्वेच्छाचार में ये जाति विभाग, धर्म कर्म विभाग बाधक हैं इसलिये आप वितण्डावाद करते हैं, वितण्डावादियों को कौन समझा सकता है।

जे० पी०—ब्राह्मण मुख से पैदा हुआ इस अर्थ को पुराण, इतिहास, स्मृति कोई समर्थन नहीं करता है, यदि कोई यह बतलाने की कृपा करता कि पहले पहल कौन ब्राह्मण, कौन क्षत्रिय, कौन वैश्य, कौन शूद्र उत्पन्न हुए जिनकी सन्तान यह वर्तमान ब्राह्मणादि जातियां हैं तो बहुत कुछ प्रश्न हल हो जाता, परन्तु पौराणिकों के पास इसके लिये कोई प्रमाण नहीं, हम उन्हीं के पुराणों से दिखलाते हैं कि उनका दावा गलत और हमारा दावा ठीक है। क्योंकि पुराण भी गुण कर्म स्वभाव से ही वर्ण व्यवस्था मानते हैं।

खण्डन—मुखादि से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति का पुराण इतिहास श्रुति, स्मृति सभी समर्थन करते हैं। आप समझना चाहते हैं कि सर्व प्रथम ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्रों में कौन उत्पन्न हुआ जिनसे आजतक ये ब्राह्मणादि जातियां मौजूद हैं ? आप एक इसी उत्तर से बहुत कुछ हल होने का विश्वास रखते हैं लेकिन आप यह तो नहीं सोचते कि सृष्टि के आदि में तो सभी पदार्थ प्राथमिक रूप में अद्वितीयता से होंगे, क्या कोई भी दुनिया का इतिहासशास्त्री उसे बता सकता है ? यदि नहीं तो फिर चातुर्वर्ण्य के ही मूल पुरुषों का अन्वेषण क्या ? सीधी सी बात है कि हर एक आदमी के पिता पितामह प्रपितामह के नाम गिनाये जा सकते हैं किन्तु प्रपितामह के भी तो पिता पितामह प्रपितामह होंगे ही और इसी क्रम से प्रत्येक व्यक्ति के लिये होना भी अवश्य सत्य है, किन्तु कहां तक

कहे जा सकते है इस विषय की सीमा सभी जानते और मानते हैं। फिर इस स्थिति में अनेक ब्रह्माण्डों के और अनेक कल्पों के आदि पुरुष को पूछना यह प्रश्न पूछने वालों की योग्यता साबित करता है। आपके मत से भी अगर आप का दावा ठीक नहीं होता तो खड़ा ही क्यों होता। आप तो अपने दावा को जायज जरूर समझेंगे, क्योंकि ग्वालिनियां भी अपनी दही को मीठी समझती हैं, पुराण तो गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था नहीं करता है, यह तो आप लोगों की कपोलकल्पना है पुराणों में तो सृष्टि की आदि से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्रों की सत्ता मानी है और जन्मान्तरीय अविश्रान्त सञ्चित शुभाशुभ कर्मों का परिणाम ही जाति, जीवनकाल, सुख सम्पत्ति आदि हैं इनमें जाति आ-जीवन स्थायी और अपरिवर्तनीय है, इन जातियों को परिवर्तनशील मानना नास्तिक पना है, जातिध्वंस करना महापातक है, अगर गुण कर्म स्वाभाव से जाति बदल जाती तो जाति कोई चीज ही नहीं रह जाती। गुण से जाति बदल जाती है ऐसा कहने वाले जरा यह नहीं सोचते कि कच्चे आम की जात क्या पकजाने पर बदल जाती है? अगर नहीं तो फिर जाति परिवर्तन वाद क्यों लिये फिरते हैं? सनातन धर्म शास्त्र का यह सनातन नियम है कि उत्कृष्ट जाति गिराये गिरजाती है किन्तु निकृष्ट जाति लौकिक उपायों से तरक्की नहीं कर सकती है। रजोवीर्य सम्बन्ध अगर अनुलोम हो और उसका सम्बन्ध यदि स्मार्त रीति से उत्कृष्ट जातियों के साथ किया जासके तब कदाचित् जाति का उत्कर्ष हो सकता है। किन्तु रजोवीर्य की शुद्धता अर्थात् जातीयता नितान्त आवश्यक है।

जे० पी०—जो लोग यह मानते हैं कि ब्राह्मण के वीर्य से ब्राह्मणी में जो सन्तान पैदा होती है वही ब्राह्मण होती है। क्षत्रिय के वीर्य से क्षत्रिया में जो सन्तान पैदा होती है वही क्षत्रिय हो सकती है अन्य नहीं, उन्हें निम्नलिखित पौराणिक बातों का समाधान करना चाहिये।

खण्डन—बात तो सत्य यही है कि ब्राह्मणों से ब्राह्मण, क्षत्रियों से क्षत्रिय, वैश्यों से वैश्य, शूद्रों से शूद्र ही होते हैं, अब आपकी पौराणिक बातें सुनिये

और उनका साथ ही समाधान भी, यद्यपि पौराणिक वातों पर हमारा कहना यह है कि वह प्रासङ्गिक कथा जातिविषयक प्रमाण नहीं हो सकती है। यहां प्रमाणतया जिन प्रमाणों की आवश्यकता है सो जाति निर्णय नामक परिच्छेद में लिखेंगे।

जे० पी०—मनुष्य का अपत्यवाचक मानव मनुष्य आदि है। दुनियां भर के सब आदमी मनुष्य कहाते हैं। मनुष्य के अन्दर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, यवन, किरात आदि सब ही हैं। इसलिये पौराणिकों के मन्तव्यानुसार सब का वही वर्ण होना चाहिये। जो मनु का था। अब मनु कौन वर्ण के थे? रामायण के अनुसार मनु क्षत्रिय थे। अतः सब वर्तमान जातियां क्षत्रिय सिद्ध होती हैं। फिर ब्राह्मण का ब्रह्मा के मुख से पैदा होना अथवा ब्राह्मण से ब्राह्मणी में ब्राह्मण का पैदा होना दोनों गलत सिद्ध होता है।

खण्डन—दुनियां जानती है कि सभी पदार्थों की संज्ञा, जाति, गुण, धर्म ये सब सामान्य विशेष इन दो भेदों से दो प्रकार के होते हैं। जैसे एक ही देवदत्त व्यक्ति की देवदत्त यह संज्ञा व्यापक है और वही देवदत्त अपने मां बाप के पास बुआ बाबू कहाता है, वही अपने मामे का भान्जा और भान्जे का मामा भी कहाता है क्या इस प्रसंग में कोई विरोध का अवसर है? ठीक इसीतरह जो बाह्यजगत् ब्राह्मविवर्त इस नाम से शुरू में कहा जाता वही आगे चलकर स्थावर जंगम जड़ चेतन आदि विभागों में बटते बटते एक परमाणु अन्य परमाणु से भिन्न समझा जाता है और जो जनकता शक्ति एक परमाणु में नहीं कही जा सकती थी, वही शक्ति परमाणुद्वय में आजाती है? इस स्थिति में मानव इस सामान्य संज्ञा के बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार जातियां कही जातीं हैं तो यह कौनसी आपत्ति की बात है, मनु कौन वर्ण के थे। इस विषय का पता लगाना व रामायण से उन्हें क्षत्रिय साबित करना ये सब पाखण्डपना है, फिर भी हम आप से सुहृद्भाव से कहते हैं कि जातियों का विभाग व जातीय धर्म व्यवस्था के लिये माध्यम स्मृति प्रमाण है। आप चाहे हजार बार

सौगन्द खाकर कहेंगे कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण पैदा नहीं हुए, तो कौन मानेगा, इधर तो निश्चय है कि—**यः कश्चिद् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ मनु० अ० २ श्लो० ७॥** तथा—**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ मनु० अ० २ श्लो० १२॥** अर्थात् वेदवाक्य, स्मृतिवाक्य, सज्जनों का आचार, अपनी आत्मा का हित, ये चार ही धर्म के साक्षात् लक्षण हैं। मनुजी का कथन ही वेद वाक्य है क्योंकि वे सर्वज्ञानमय थे। इस स्थिति में आप हैं कौन कि इधर उधर के पौराणिक वचनों से और कुतर्कों से किसी की जाति नष्ट करेंगे। आपतो **'मनोरपत्यं पुमान् मानवः'** बस एक इसी व्युत्पत्ति को धरकर—**न शूद्र राज्ये निवसेन्नाधार्मिक जनावृते। न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः॥ अ० ४ श्लो० ६१॥** अर्थात् शूद्र राज्य में अधार्मिक ग्राम में पाषण्डियों के बीच और अन्त्यजादिकों के बीच न बसना चाहिये। इन सब मनुकथित वचनों को तिलाञ्जलि ही देते हैं तो क्या आप सभी को अपने ही साथी बनावेंगे ? यह आपकी अविमृश्यकारिता, अनवधानता व अहंमन्यता है। और कुछ नहीं, आप अबाधित सिद्धान्त सुनिये—जैसे पदार्थों की संश्लेषण विश्लेषण शक्ति प्रकृति शक्ति को उल्लंघन कर जाती है ठीक इसी तरह मानव इस नाम को जातियां अलग २ बांट देती हैं। आप कहते हैं कि रामायण से पता लगता है कि मनु क्षत्रिय थे। यह कौनसी ताज्जुब की बात है जिस ग्रन्थ में खास क्षत्रिय चरित्र नामक और क्षत्रिय प्रकृति, गुण, धर्म वर्णनीय है, वहां के मनु तो क्षत्रिय होंगे ही। क्या आप यह भी जानते हैं कि कितने मन्वन्तर हुए हैं ? फिर आप एक मनु की बात लेकर बैठे हैं। यह आपका अप्रमाणिक विचार है।

जे० पी० २—मनु का पुत्र पृषध्र गुरु के गोवध से शूद्र हो गया। विष्णु पुराण ४। १। १४।

खण्डन—आप कहिये कि क्या आप गोवध को पाप मानते हैं ? अगर हां, तो प्रायश्चित्त शूलपाणि, प्रायश्चित्त भवदेव, प्रायश्चित्ताध्याय सभाष्य याज्ञवल्क्य देखिये वहां आपको साफ दीखेगा कि ब्राह्मण—स्वामिक गोवध में क्षत्रिय-स्वामिक गोवध में व वैश्य-स्वामिक गोवध में और शूद्र—स्वामिक गोवध में कम ज्यादा प्रायश्चित्त सभी निबन्धकारों ने लिखा है। किसी को भी आपके समान समानता का ध्यान नहीं आया, खास मनु महाराज लिखते हैं कि—**गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने। पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः॥** अ० ८ श्लोक ३२५। इस श्लोक से ब्राह्मण—स्वामिक गौ की विशेषता कही गई है ऐसे ही-"**अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य**" इत्यादि श्लोक ३३७ ३३८ से स्पष्ट कह जाता है कि जिस चोरी में जो दण्ड नियत है वह दण्ड चोरी के गुण दोषों को जानने वाले शूद्र को अष्टगुण और ऐसे ही वैश्य को सोलहगुण तथा क्षत्रिय को बत्तीसगुण और गुण—दोषज्ञ ब्राह्मण को चौसठगुण या शतगुण अथवा अष्टाविंशति अधिक शतगुण दण्ड देना लिखा है। अगर ये चारो वर्ण हैं ही नहीं तो यह दण्ड भेद क्यों ? इतना ही नहीं साक्षी प्रश्न विधान में मनुने लिखा है—कहिये ऐसा ब्राह्मण से पूछें, सच कहिये ऐसा क्षत्रिय से पूछे, पशु, खेत सोना आदि चुराने का पाप झूठ कहने पर होगा, ऐसा कहकर वैश्य को पूछे, सब प्रकार के प्रत्यवाय का भय देकर शूद्र से पूछे (अध्याय० ८। श्लोक० ८८) अगर चार वर्ण ही नहीं तो ये चारों भेद क्यों ? गोवध के पाप में प्रायश्चित्त नहीं करने पर केवल शूद्र ही बनकर निस्तार कहां ? शूद्रोंको तो त्रैवर्णिक सेवा प्राप्त है किन्तु गोवध रूप उपपातक में तो धर्मकर्माऽनर्हता और अव्यवहार्यता हो जाती है। उसका संसर्ग भी त्याज्य है।

जे० पी०—३. मनु पुत्र करूप से महा बलवान् क्षत्रिय उत्पन्न हुए। (विष्णुपुराण। ४। १। १५) भागवत (९। २। १५) के अनुसार कारूप नामक क्षत्रिय हुए जो उत्तर देश के रक्षक और धर्मवत्सल ब्राह्मण हुए। ४—"**नाभागो नेदिष्टपुत्रस्तु वैश्यतामगमत्**" (वि० ४।। १ १६) नेदिष्टके पुत्र नाभाग वैश्य हो गये।

जे० पी—५. हरिवंश (११ अध्याय) में कहा गया है कि नाभागारिष्ट के दो पुत्र वैश्यसे ब्राह्मण हुए। **नाभागारिष्ट पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।**

६—मनुपुत्र धृष्ट से धार्ष्टक क्षत्रिय हुए। (वि० ४। २२) भागवत (९। २। २७) के अनुसार पुनः इस वंश के क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए।

७— अग्नि वैश्य के विषय में भागवत बतलाता है कि देवदत्त के पुत्र अग्नि वैश्य हुए। इनके वंश में अग्निवैश्य गोत्रवाला ब्राह्मण वंश चला।

खण्डन—भागवत नवमस्कन्ध की कथा से उपरोक्त सभी बातों पर प्रकाश पड़जाता है। यहां हमें भागवत की कथा नवमस्कन्ध के प्रथम अध्याय से ही लिख देनी उचित होगी, श्लोकाङ्क हम देते नहीं, विष्णु पुराण की कथा भागवत की कथा में गतार्थ है। जिन्हें देखना हो भागवत नवमस्कन्ध शुरू से पढें और अक्षर २ मिलालें। राजा बोले—आपने सभी मन्वन्तर कहे और मैंने सुने! सुनने और कहने का हिसाब इस प्रकार है—२४ अध्यायों में वैवस्वत पुत्रों का वंश कहा यह कथा अष्टमस्कन्धमें कही गई है। इस समय इस नववें स्कन्ध में सूर्य-चन्द्र वंशों का वर्णन किया जाता है। जिसमें १३ अध्यायों से सूर्य वंश और ११ अध्यायों से चन्द्र वंश का वर्णन किया जाता है। उसमें प्रथमअध्याय के बीच चन्द्र वंश प्रवेश कराने के लिये सुद्युम्न का स्त्री पना कहा जाता है। यहां पांच श्लोकों से प्रश्न किया गया है। शुकदेवजी कहते हैं कि आप मनु वंश सुनें—जो कि विस्तार पूर्वक सौ वर्षों से भी नहीं कहा जासकता है, जो परमात्मा चराचर जगत् कि आत्मा हैं, कल्पान्त में यह विश्व नहीं था केवल वही जगत् पिता थे। उन जगत् पिता की नाभि से पद्मकोशान्तर्गत चतुर्मुख ब्रह्मो स्वयम्भू उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के मन से मरीचि और मरीचि से कश्यप हुए। उसके बाद दिति में विवस्वान् पुत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् श्राद्ध देव मनु उत्पन्न हुए। मनुने श्रद्धा में दश पुत्र उत्पन्न किये। उन पु ों के नाम क्रम से इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नारिष्यत, पृषध्र, नाभाग और कवि हैं १२ पहले मनु निःस-

न्तान थे, उन्होंने सन्तान के लिये मित्रावरुण की इष्टि वसिष्ठ से करवाई ॥१३॥ उस यज्ञ में मनु की पत्नी श्रद्धा ने होता से प्रार्थना की कि जैसे हमें लड़की हो वैसा हवन कीजिए। इस पर अध्वर्य से प्रेरित होकर होता ने वषट्कार का उच्चारण किया। इस आचरण से इला नाम की कन्या हुई। उस कन्या को देखकर मनु बहुत प्रसन्न नहीं हुए। अप्रसन्नता से ही गुरु से कहा कि भगवन् ? आप जैसे ब्रह्मवादियों का यह कौनसा कर्म है ? कि यह उलटा फल हुआ यह दुःख की बात है ऐसा मन्त्र में अन्यथा फल नहीं होना चाहिये। देखिये आप लोग मन्त्र के जानकार तपस्या से पाप को जलाने वाले हैं फिर आप के समान देव स्वरूपों में संकल्प की विषमता क्यों ? ॥ १८ ॥

अर्थात् लड़के के स्थान में लड़की क्यों हुई ? इस पर अध्वर्युने कहा कि यह होता की गलती है, होता ने ही संकल्प में हेर फेर किया है। फिर भी मैं अपने सामर्थ्य से आपको उत्तम सन्तान वाला बनाऊँगा ॥ २० ॥ ऐसा कहकर उन्होंने आदि पुरुष की स्तुति की जिससे कि इला लड़की लड़का रूप में पलट जाय। इसपर भगवान ने वरदान दिया, और इला नाम की लड़की सुद्युम्न नाम का पुरुष बनगई ॥ २२ ॥ वह सुद्युम्न किसी समय में बन के बीच शिकार खेलता हुआ उत्तर दिशा में गया। और मेरु की उपत्यका के बन में प्रविष्ट हुआ, वहां पर उमा के साथ शिवजी एकान्त क्रीडा कर रहे थे। वहां जाते ही सुद्युम्न स्त्री बन गया, और उसका घोड़ा घोड़ी हो गया, इस प्रकार के अपना २ लिंग परिवर्तन देखकर सुद्युम्न के साथियों को बड़ी अचरज हुई ॥ २७ ॥ इसपर प्रश्न-ऐसा कौनसा वह प्रदेश था, जिसमें मर्द औरत हो जाते थे ? इसका उत्तर आप दें। इसपर शुकदेवजी ने कहा—किसी समय में देवलोग वहां ही महादेव के दर्शनार्थ गए। इसपर अल्पवस्त्रा पार्वती लज्जित होकर वस्त्र सँभाल ने लगी ऋषिलोग भी लौटकर नरनारायणाश्रम में चले गये। इधर महादेवजीने कहा कि यहां जो आवेगा वह औरत हो जायगा, बस, महादेव की इस प्रतिज्ञा को सुनकर पुरुषों ने उस वन में जाना बन्द कर दिया, स्त्री [illegible] सुद्युम्न ने अपने परिकर

के साथ उसे बन में फिरने लगा, भगवान् बुध ने उसका स्त्री समुचित सौन्दर्य देखकर उसे चाहा । इधर वह स्त्री उन सोमराज के पुत्र बुध को पति बनाने की इच्छा करने लगी । उन दोनों के दाम्पत्य धर्म से पुरूरवा उत्पन्न हुआ । इस तरह स्त्री भाव में पड़ा हुआ सुद्युम्न ने अपने कुल गुरु वसिष्ठ को याद किया । वसिष्ठ ने उसकी स्त्री दशा को अपनी नजरों से देखा । वसिष्ठ ने महादेव को अनुनय विनय कर मनाया । महादेव ने राजी होकर भी अपनी बातको सत्य करने के लिये क्रम से १ मास स्त्री और एक मास पुरुष होना स्वीकार किया । उसने अपनी दशानुकूल १ मास राज्य करता और १ मास परदे में रहता स्वीकार किया, इस लज्जायुक्त व्यवहार से प्रजा प्रसन्न नहीं हुई । सुद्युम्न के ३ पुत्र हुए । जो कि दक्षिण देशके धर्मात्मा राजा बने । कुछ दिन के बाद प्रतिष्ठान के राजा पुरूरवस राज्य छोड़ वानप्रस्थ बना ।

इस तरह सुद्युम्न के चले जाने पर वैवस्वत पुत्र मनु ने पुत्र के लिये यमुना में सौ वर्ष तपस्या की । उसके बाद मनुने हरि भगवान् का यज्ञ किया । इस यज्ञ के प्रभाव से मनुने इक्ष्वाकु वंशवर्धक दश पुत्र लाभ किये । इनमें पृषध्र नाम का पुत्र गोपालक नियत हुआ । किसी समय में अचानक गोशाला में एक व्याघ्र आगया, डरके मारे गौएं गोशाला में इधर उधर भगने लगीं इस स्थिति में गोपालक पृषध्र ने बाघ की शंका से तरवार से अन्धेरे में वार किया । उससे अचानक बभ्रु का शिर फूट गया । व्याघ्र भी घायल होकर रक्त गिराता हुआ भागा । और इधर व्याघ्र को मरा हुआ जानकर ज्योंही पृषध्र ने देखा भाला, त्योंही उसे पता लगा कि व्याघ्र बुद्धिसे मैंने गो हत्या करली ! कुल गुरु को पता लगाने पर अपनी गौकी मौत से क्रोध हुआ । उन्होंने पृषध्र को शाप दिया कि—"**न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भविताऽमुना।**" ९ । २ । ९ अर्थात् अरे न क्षत्रबन्धु ? तू इस पाप कर्म से शूद्र होगा ।

इस प्रकार से समस्त प्रस्ताव पढ़कर पृषध्र का शूद्र होना किन्तु गोवध से और गुरु शाप से साबित है अन्य किसी गुण कर्म स्वभाव से नहीं, सो आपको स्पष्ट

मालूम पड़ेगा, फिर यह बात इस प्रस्ताव में रखने का आपका अभिप्राय क्या ? पहले तो आप चारों वर्णों की सत्ता प्रमाणित करते फिर आप उपपातक रूप प्रत्यवाय में व गुरु शाप में क्षत्रिय का शूद्र होना लिखते हैं। इससे आपका चातुर्वर्ण्य का संहार रूप मनोरथ नहीं सिद्ध होता, हम तो आप से स्पष्ट कहचुके हैं कि जाति, आयुर्दाय, भोग ये तीन वस्तुयें जन्मान्तरीय कर्मोदयानुसार अपरिवर्तनीय हैं किन्तु तीव्र तथा तीव्रतर तपः प्रभाव से परिवर्त्तित हो सकता है। दूसरा सबब परिवर्तन का यह भी है कि अनुलोम संकर में स्मृति प्रोक्त मर्यादा से जाति की उत्कर्षता व अपकर्षता हो सकती है आशा है कि—"**यद्दुष्करं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुस्तरम्। तत्सर्वं तपसः साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्**" इस मनुवाक्यानुसार तपः प्रभाव पर आपकी भी श्रद्धा होगी। मनुस्मृति को आप मानते हैं तभी तो ठिक ठीकाने मनुका प्रमाण पेश करते हैं।

अतएव जाति विषयक परिवर्तन वाद थोड़ा मनुजी के ही मुख कमल से आप सुनें—"**तपो बीज प्रभावै स्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः**" अ० १० श्लोक ४२ अर्थात् इस संसार में मनुष्यों के बीच सजाति से उत्पन्न अथवा साङ्कर्य से उत्पन्न मनुष्य की तपस्या के प्रभाव से विश्वामित्र के समान और बीज प्रभाव से ऋष्यशृङ्गादि के समान कृतयुग त्रेतायुगादि में उत्कर्षता और अपकर्षता जाति विषय में होती है। **शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेनच** ॥ ४३ ॥ अर्थात् पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद, खश आदि क्षत्रिय जातियां ब्राह्मण के नहीं मिलने से और धीरे २ क्रियालोप करने से शूद्रता को प्राप्त कर गई हैं। ४३। ४४। **मुखबाहूरुपाज्जानां या लोके जातयो बहिः। म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः** ॥ ४५ ॥ अर्थात् मुख बाहु उरु चरण सम्भूत चातुर्वर्ण्यों के बीच जो क्रिया लोपादि निमित्तों से बाह्य जातियां म्लेच्छ भाषा बोलतीं अथवा आर्यभाषा बोलतीं हैं वे सभी दस्यु कहलातीं हैं ॥४५॥

इसके बाद जो संकर अपसंद नाम की छः जतियां हैं, उनकी जीविकायें ४७ श्लोक से ५६ श्लोक तक में कह गयीं है। तत्पश्चात् ५७ श्लोक से ६० श्लोक तक योनि सांकर्य दोष जानने का हेतु तथा साङ्कर्य दोष की प्रबलता दिखाई गई है॥ फिर लिखा है—"**यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णसंकराः। राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ ६१ ॥** अर्थात् जहां ये वर्ण संकर लोग वर्णों में दोष लगाने वाले होते हैं। वह राष्ट्र अपने देश वासियों के साथ शीघ्र नष्ट होता है। ६१ ॥ इससे स्पष्ट है कि चातुर्वर्ण्यों को अथवा वर्णसंङ्करों को अपने २ वर्ण स्थान में ही मर्यादा पूर्वक रहना चाहिये। अन्यथा जाति के साथ देश का भी नाश होता है। क्या इस निरूपण से कोई कहसकता है कि चाहे जिस जाति का आदमी यज्ञोपवीत कन्धे पर उठा कर ब्राह्मणत्व का दावा करे ?

मनुजी का अभिप्राय देखिये

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः। प्रब्रूयाद ब्राह्मण-स्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १० । १ ॥ अपने २ कर्म में स्थित द्विजाति, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण वेद पढ़ें और उन त्रैवर्णिकों को ब्राह्मण पढ़ावें, क्षत्रिय, वैश्य नहीं पढ़ावें ॥ १० । १ ॥ इस श्लोक से चातुर्वर्ण्य की सत्ता स्पष्ट है। ऐसे ही सभी वर्णों की जीविका के उपायों को ब्राह्मण ही सोचें व समझावें क्योंकि—**वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्। संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ३ ॥** जाति की उत्कर्षता से हिरण्यगर्भ के उत्तमाङ्ग (मुख) से उत्पन्न होने के सबब से व नियमों के धारण करण से और संस्कारों की विशेषता से वर्णों के स्वामी ब्राह्मण हैं। द्विजाति कौन हैं ?—**ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ ४ ॥** अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों द्विजाति हैं। चौथा शूद्र एक जाति है पांचवां वर्ण नहीं है **सर्व**

वर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु। आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥ अर्थात् चातुर्वर्ण्यों में अक्षतयोनि सजातीय विवाहित पत्नी में अनुलोम विधि से उत्पन्न सन्तान माता पिता की जाति से युक्त होता हैं ॥ ५ ॥ यहां पर प्रसिद्ध टीकाकार लिखते हैं कि जैसे गौ अश्व आदि की जाति अवयव विशेष से जानी जाती है। वैसा अवयव विशेष से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि जाति समझते नहीं बनता है इसलिये ब्राह्मण आदि जाति समझने का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। इस श्लोक में पत्नी पद है इससे पर पत्नी में उत्पन्न पुत्रों की ब्राह्मणादि जाति नहीं होती है। ऐसे ही देवलने भी कहा है--**द्वितीयेनतु यः पित्रा सवर्णायां प्रजायते। अववाट इतिख्यातः शूद्रधर्मा सजातितः ॥ व्रतहीना न संस्कार्याः स्वतन्त्रास्वपि ये सुताः उत्पादिताः सवर्णेन व्रात्या इव बहिष्कृताः ॥** अर्थात् सवर्णा स्त्री में दूसरे पिता से जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह अववाट कहाता है, और जाति से शूद्रों के समान है। ऐसे ही स्वैरिणी स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह व्रत से रहित है उसका संस्कार भी कर्तव्य नहीं, अगर सवर्ण से भी उत्पन्न हुआ है तथापि वह व्रात्य के समान ही बहिष्कृत है। इसी बात को याज्ञवल्क्यजी ने भी कहा है—**सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः** अर्थात् सजातीय स्त्री में सजातीय पुरुष से सजातीय सन्तान होती है। एसा कहकर फिर कहा कि—**विन्नास्वेष विधिः स्मृतः** ॥ विवाहित स्त्रियों में यह नियम है ऐसा कहते हुए याज्ञवल्क्यजी ने निश्चय किया कि सजातीय से उत्पन्न ही पुत्र सजातीय हो सकता है, दूसरा नहीं

इस तरह स्मृति वचनों से सिद्ध होता है कि जाति स्मार्त विधि से जन्म जनित है। यह जाति संस्कारों से नहीं बदलती है। बदलने का तरीका एक तपः प्रभाव और दूसरा—**शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥** अर्थात् शूद्र स्त्री में ब्राह्मण से पारशव नाम का वर्ण उत्पन्न हुआ है। वह पारशव जाति

वाली लड़की हो, उसे ब्राह्मण व्याहे, उससे अगर लड़की हो, उसे भी कोई दूसरा ब्राह्मण व्याहे, उससे भी लड़की हो इस क्रम से सातवे जन्म में ब्राह्मण बन सकता है। बस जन्म से जाति परिवर्तन की यही युक्ति है दूसरी युक्ति तपस्या है। पुराणों में जितनी जाति परिवर्तन की बातें हैं वे सब इन्हीं दोनों युक्तियों से चली हैं, अतएव पौराणिक उन परिवर्तनों से आज जाति परिवर्तन सिद्ध करना लज्जा की बात है। दुनियां जानती है कि धार्मिक नियम और जातीय व्यवस्था स्मृतिग्रन्थों से प्रचलित हैं और यहां तो पुराणों से घृणा करने वाले और स्मृतियों को अप्रमाणित कहने वाले पौराणिक दृष्टान्त से जाति परिवर्तन सिद्ध करते हैं। यह कथमपि विवेक ग्राह्य नहीं है। सनातानियों को तो इन बातों पर हरगिज ध्यान नहीं देना चाहिये क्योंकि सनातनियों के पास तीन प्रमाण हैं प्रथम श्रुति, द्वितीय स्मृति, तृतीय पुराण इन तीनों में स्मृति प्रमाणों से ही वर्णव्यवस्था व बहुधा संस्कार विधियां होती हैं। पौराणिक बातों में बहुत बड़ी व्यापकता है, अतएव उन कथाओं के दृष्टान्त पर न आजतक जाति कल्पना हुई, न होगी ? उन दलीलों को इस प्रस्ताव में लाना वस्तु स्थिति में बाधा डालना है।

उपरोक्त निरूपण से आपकी संख्या से २२ संख्या तक जो पौराणिक जाति परिवर्तन को आपने दिखाया है वे सब तपो बीज प्रभाव से हुए हैं, अतएव उन दृष्टान्तों से आपका जाति ध्वंसवाद सिद्ध नहीं होता है। इस बात को आप अपने हृदय से और सुहृद से सोच समझलें। इन दलीलों से यह कदापि सिद्ध नहीं होता है कि संस्कार करके कोई शूद्र वैश्य या क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण बन सकता है। जो आपके पौराणिक दृष्टान्त हैं, उनसे यह बात सिद्ध नहीं होती है कि कोई शूद्र अथवा वैश्य चाहे तब संस्कार करके अपनी जाति बदल ले।

बदलने की रीति—**शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ ६५॥** इस श्लोक का

अर्थ मनोयोग से समझिये—यहां जो ब्राह्मण पद है वह ब्राह्मण से शूद्र जाति की स्त्री में उत्पन्न पुत्र पारशव समझा जाता है। वह पुरुष अगर शूद्रा से विवाह कर पुरुष को उत्पन्न करे वह पुरुष भी शूद्रा से विवाह कर दूसरा पुरुष उत्पन्न करे, और वह भी वैसे ही उत्पन्न करे, तब वह ब्राह्मण सातवें जन्म में शूद्रता को प्राप्त करता है। इसी तरह क्षत्रिय से वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुए पुत्र की उत्कर्षता व अपकर्षता समझनी चाहिए। लेकिन—**जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः सप्तमि पञ्चमेऽपि वा।** इस याज्ञवल्क्य वचन से क्षत्रिय से उत्पन्न सन्तान की पांचवे जन्म में उत्कर्षता अपकर्षता होती है। इस तरह जो रीति स्मृतियों में कही गई है, उसी आधार पर पौराणिक दृष्टान्त है आगे चलकर ६१ वें श्लोक से मनुजी कहते हैं कि ब्राह्मण से अनार्य स्त्री में व अनार्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए पुत्रों में उत्तम कौन ? इसका उत्तर ६७ वें श्लोक से कहते हैं कि—अनार्य नारी में आर्य पुरुष से उत्पन्न सन्तान गुणों से आर्य हो सकता है। और अनार्य से आर्य स्त्री में उत्पन्न होने पर भी अनार्य ही रहेगा। ऐसा निश्चय है। फिर देखिये। **तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः। वैगुण्याज्जन्मनः पूर्वः उत्तर प्रतिलोमतः॥ ६८॥** वे दोनों पुत्रों में एक तो जन्म (जाति) की विषमता से व दूसरा प्रतिलोम के दोष से उपनयनादि संस्कार के योग्य नहीं है—**सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं सम्पद्यते यथा। तथार्याज्जातमार्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥ १०। ६७॥** जिस तरह उत्तम क्षेत्र में उत्तम बीज उत्पन्न होकर सम्पन्न होता है उसी तरह आर्य से आर्य स्त्री में उत्पन्न सन्तान सब संस्कारों के योग्य है—**बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः। बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयन्तु व्यवस्थितिः ॥ १०। ७०॥** कोई विद्वान बीज की तारीफ करते हैं। और दूसरे क्षेत्र की तारीफ करते हैं, इसी तरह तीसरे विद्वान बीज और क्षेत्र दोनों की तारीफ करते हैं, इन तीनों पक्षों में यह व्यवस्था है—**अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति। अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत्**

॥ ७१ ॥ खेत के सियाव गिराया गया बीज जैसे बीच में नष्ट होता है उसी नरह बिना बीज का क्षेत्र भी नष्ट हो जाता है। इस श्लोक से बीज और क्षेत्र दोंनों की प्रधानता दिखाई गई है। अब इस समय बीज की प्रधानता दिखाते हैं-

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्। पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥ ७२ ॥ जिस लिये बीज के प्रभाव से तिर्यग्योनि से उत्पन्न ऋष्यशृङ्गादिक ने मुनित्व को प्राप्त किया, प्रणम्य होने से पूजित रहे और वेदज्ञान से प्रशस्त बने रहे, इसलिये बीज प्रशस्त है। यहां पर टीकाकारों ने खुलासा किया है कि बीजकी प्रधानता निरूपण इसलिये किया जाता है कि बीज क्षेत्र इन दोनों में बीज से उत्कृष्ट जाति प्रधान समझी जाती है। फिर लिखा—

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम्। संप्रधार्याऽब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥ ७३ ॥ आर्य कर्म करने वाले अनार्य और अनार्य कर्म करने वाले आर्य ये दोनों न समान हैं और न असमान हैं। यहां टीका-कारने स्पष्ट अर्थ यह किया है कि शूद्र अगर ब्राह्मण के कर्मों को करे और द्विजाति यदि शूद्र कर्म करे तो ब्रह्माने विचार कर कहा कि वे दोनों नसम हैं अथवा न विषम हैं। क्योंकि द्विज कर्म करता शूद्र द्विजाति तुल्य नहीं है, क्योंकि अनधिकारी होकर वह द्विज कर्म कर रहा है अतएव द्विजतुल्य कथमपि नहीं हो सकता है। ऐसे ही जो ब्राह्मण होकर शूद्र कर्म करता है वह शूद्र सम नहीं है क्योंकि वह अकर्तव्य करने वाला है। इस हालत में उन दोनों को असम भी नहीं कह सकते क्योंकि अकर्तव्य करने से दोनों तुल्य भी हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जिसके लिये जो निषिद्ध है उसे वह नहीं करना चाहिये। अतएव संकर जाति तक के लिये जीविका और धर्म दोनों कहे गये हैं। फिर क्या वजह की कोई इस बीच में कोलाहल करे।

इन उपरोक्त वचनों पर विचार करने से साफ होता है कि सृष्टि के आरम्भ काल से चार वर्ण है, इनमें जाति अपरिवर्तनीय है। जिस तपस्या के प्रभाव से परमात्मा तक को साक्षात् दर्शन देना पड़ता है और इन्द्रासन भी डोला जाता

हैं, उस तपः प्रभाव से जाति वदल सकती है। और बीज प्रभाव से स्मृति-दर्शित दिशा से जाति बदल सकती है। पौराणिक जाति परिवर्तन इन्हीं दो कोटियों में है इसके सिवा शूद्र होकर द्विजकर्म करने की बात मनु अ० १० श्लोक ७३ से कटजाती है जो कि सानुवाद ऊपर लिखा गया है। ऐसे ही—"**व्यभिचारेण वर्णानामवेद्या वेदनेन च, स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः** ॥ १०। २४ चातुर्वर्ण्यों में वर्ण संकर होने के कारण तीन हैं। प्रथम व्यभिचार, द्वितीयः अविवाह्य स्त्री से विवाह, तीसरा स्वकर्म—जाति कर्म त्याग, इस तीसरे हेतु से अर्थात् निज जातीय कर्मों के त्यागने से वर्ण संकरता का दोष आता है। जो शूद्र होकर आज अपना द्विजसंस्कार करते हैं या करना चाहते हैं उन्हें ख्याल रखना चाहिये कि जैसे गड्ढे में गिरने से हानि होती है वैसे ही सीढ़ी के बिना कोठे पर चढ़ने की चेष्टा से भी दोनों हालत खतरे की है। ठीक वैसे ही शूद्र होकर अन्त्यजों के समान कर्म करना अथवा द्विजाति समुचित कार्य करना दोनों निषिद्धाचरण होने से पाप ही हैं। इस विषय में विशेष विचार जाति-विमर्श प्रकरण में करेंगे। आज वे राजा नहीं रहे जिन्हें यह अधिकार था कि—"**यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः। तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत्**"॥ (मनु अ० १० श्लोक ९६) जो कोई जाति से अधम होकर लोभ से उत्तम जाति की जीविका से जीवे। राजा को चाहिये कि निर्धन बना कर अपने राज्य से बाहर करदे। यह बात नहीं रही अतएव आज कोई मजहबी लालच से अथवा टके के लोभ से जी चाहे बोलते और करते हैं। लेकिन यह कर्तव्य नहीं।

जे० पी—प्रश्न—शूद्र किस कर्म से ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण किस कर्म से शूद्र हो जाता है ? यह हमारी सुनने की इच्छा है। ऐसा प्रश्न करके आप खुद उत्तर लिखते हैं-खोटे कर्मों के करने से ब्राह्मण स्थान से भ्रष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मण अपने धर्म त्याग करके क्षत्रिय के धर्म को सेवता है वह क्षत्रिय हो जाता है। वैसे ही वैश्य हो जाता है। इसी को मनुने पुष्ट किया है" **सद्यः**

पतति जातितः " जो ब्राह्मण दूसरों की वृत्ति स्वीकार कर लेता है वह तुरन्त जाति से पतित हो जाता है।

खण्डन—किसी मामूली कर्म से न शूद्र ब्राह्मण होता है अथवा न ब्राह्मण शूद्र बनता है। यह आपकी समझ में भूल है। धर्म शास्त्र ऐसा सहज नहीं है कि उसे कोई ऊपरी नजर से देखकर समझ लेवे। ऐसा करने से आपके समान ही आदमी हास्यास्पद ठहरेगा, उदाहरणार्थ आप देखिये—"**सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च। त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात्** ॥ ९२ ॥ मांस, लाक्षा, लवण इन तीनों को बेचने से सद्यः पतित होता है और लगातार तीन दिन तक दूध बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। इसके बाद लिखा—**वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः। परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः** ॥ ९७ ॥ बुरा भी स्वजाति कर्म उत्तम है किन्तु दूसरों का सर्वाङ्गीण पूर्ण भी कर्म कर्तव्य नहीं है क्योंकि परधर्म से जीता हुआ मनुष्य अपनी जाति से सद्यः पतित होता है। दुनियां का कोई भी विद्वान आजतक किसी भी व्यक्ति को उपरोक्त बचनों के बल पर न ब्राह्मण से शूद्र बनाया अथवा न शूद्रको ब्राह्मण, क्योंकि उपरोक्त बचन सिर्फ मांस आदि विक्रय को अत्यन्त निषिद्ध कायम करने के लिये ही कहा गया है। जाति च्युति के कारण तो सिर्फ पञ्च महापातक ही कहे गये हैं। नवधा पापों में किस पाप का क्या परिणाम होता है इस विषय को समझने या समझाने के लिये धर्मशास्त्र में परिश्रम अपेक्षित है। केवल मनुस्मृति के एकाध वचनों के बलपर सिद्धान्त करने से ऐसे ही मुँह की खानी पड़ती है। कम से कम मनुस्मृति का और याज्ञवल्क्य का प्रायश्चित प्रकरण सम्पूर्ण देख जाइये फिर समझियेगा कि ब्राह्मण किस तरह शूद्र बन जाता है। और शूद्रों के ब्राह्मणत्व का तो आप स्वप्न भी न देखें। क्योकि समस्त धर्म शास्त्रों में आपको एक भी नुसखा इस मर्ज़ का नहीं मिलेगा। आपका गर्ज है कि ब्राह्मण लोग जब अकर्तव्य करते हैं और शूद्र लोग हमारे उपदेशानुसार कन्धे पर जनेऊ लादने को उतावले हैं। फिर

क्यों न इन दोनों का पद परिवर्तन किया जाय! रही बात धर्म शास्त्रीय सम्मति की, सो आप इस विषय में पौराणिक कथा कन्था उधेड़ कर रखा ही है जिससे कि वे भोलेभाले कोमरी, कुर्मी लोग आपके प्रगाढ़ पाण्डित्य अगाध मेधा, अपरिमित बहुदर्शिता पर फिदा हो ही गये हैं। लेकिन आपके इस गोरख धन्धे से विद्धज्जनों को बड़ा परिताप ही होगा, और आपकी विद्वत्ता की कीमत भी साथ ही होती है। भला आप ही इस निम्नोक्त मनु वचन का शब्दार्थ और भावार्थ तो समझाइये—**सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् ब्राह्मणस्त्वनयं गतः। पवित्रं दुष्यतीत्येतद् धर्मतो नोपपद्यते ॥ मनु० अ० १० श्लो० १०२॥** अर्थात् विपत्ति में पड़ा हुआ ब्राह्मण सभी से पतिग्रह लेवे, इससे उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता है क्योंकि पवित्र गङ्गाजल आदि गलियों के जल से मलीन हो जाता है यह बात शास्त्र से सिद्ध नहीं होती है। इसका भाव साफ है कि कलिकाल के समान विषम समय में ब्राह्मणत्व का नाशक नीच प्रतिग्रह आदि नहीं हो सकता है। ऐसे ही —**नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात्। दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमाहिते ॥ १० । १०३ ॥** पढ़ाने से, यज्ञ कराने से या निन्दितों को दान देने से ब्राह्मण दोषी नहीं है क्योंकि वे वह्नि और जल के समान हैं॥ इस तरह के प्रकरण में आकर भी आपने झट से- **"सद्यः पतति जातितः"** इस अंश को पकड़ लिया और अपनी बात सिद्ध करली कि ब्राह्मण शूद्र बन जाता है। आप दृढ़ समझिये कि जाति एक ऐसा रङ्ग है कि जो चढ़ गया सो चढ़ गया, बदल नहीं सकता। हां खराब हो सकता है। अतएव ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है किन्तु उस स्थान में शूद्रत्व नहीं आता है। क्योंकि शूद्रत्व भी जन्मान्तरीय सञ्चित कर्म का ही परिणाम है वह बिना मूल्य वितरण की वस्तु नहीं है। इस स्थिति में निष्कर्ष यह निकलता है कि ब्राह्मण अथवा शूद्र दोनों ही निन्दित आचरण से निन्दित हो जावेंगे, अपनी जाति खो बैठेंगे, किन्तु परस्पर परिवर्तित नहीं कर सकते हैं। शूद्र अगर ब्राह्मण कर्तव्य को पवित्र समझ कर भी करेगा तथापि वह अनधिकार चेष्टा

करने रूप दोष से दूषित ही कहावेगा, फिर आपकी परिवर्तन सम्बन्धी बातें प्रमाण शून्य और युक्ति शून्य है।

जे० पी०—वनपर्व अ० ३१२ युधिष्ठिर उवाच—**श्रृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्। कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥** हे यक्ष सुनों, कुलसे और केवल वेद पाठ से ब्राह्मण नहीं परन्तु कर्म से ही ब्राह्मण माना जाता है।

खण्डन—-आप किसी श्लोक का अर्थ व्याकरण को भुला कर नहीं कर सकते हैं। भला द्विजत्व इस पद की कोई भी वैयाकरण शक्ति को समझता है—"**द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्यां जातो द्विजः**" अर्थात् जन्म और निषेकादि संस्कारों से जो उत्पन्न हुआ वह द्विज जो कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य में सीमित हैं कोई भी कह सकता है कि द्विज यह जाति वाचक शब्द है। फिर उस जाति वाचक शब्द से—**द्विजस्य भावो द्विजत्वम्**। अर्थात् ब्राह्मण की विशेषता यह ब्राह्मण की विशेषता केवल खानदान से या स्वाध्याय से अथवा विद्या से नहीं कायम रह सकती है ब्राह्मण की विशेषता में तो वृत्त-सद्वृत-सदाचार ही कारण है। इस प्रकार के अर्थ में आप अनर्थ करते हुए लिखते हैं कि कर्म ही से ब्राह्मण माना जाता है यह आपकी मनमानी बात में मनमोना प्रमाण है द्विजत्व पद में त्व प्रत्यय का अर्थ है भाव। और **मुख्यार्थ बोधे प्रकारतया भास मानो धर्मः**। अर्थात् मुख्य अर्थ में विशेषणविधि से भासमान अर्थ को ही भाव कहते हैं। इस स्थिति में आप ही कहिये कि द्विजत्व इस पद का ब्राह्मण की विशेषता यह अर्थ हुवा, या नहीं? दूसरी बात प्रयोगावस्था का विचार सो इस तरह है। शङ्कराचार्य ने गीताभाष्ये में लिखा है कि—-**ब्राह्मणत्वस्यहि रक्षित रक्षितः स्याद्वैदिको धर्मः**। अर्थात् ब्राह्मणत्व की रक्षा होने से ही वैदिक धर्म रक्षित रहेगा, अगर यहां कोई ब्राह्मण जाति की रक्षा करने से वैदिक धर्म रक्षित रहेगा, ऐसा अर्थ करे तो सर्व प्रथम विरोध आप ही करेंगे। आप चाहे विरोध न करें, किन्तु वक्ता का अभिप्राय तो साफ दीखता है कि

ब्राह्मणत्व और वैदिक धर्म एक ही है तभी तो एक की रक्षा से दूसरा रक्षित रहता है। वास्तविक बात भी ऐसी है ब्राह्मण जाति धर्म और वैदिक धर्म दो अभिन्न पदार्थ हैं। जैसे ब्राह्मण जाति के बिना कोई ब्राह्मण नहीं कहा सकता है वैसे ही द्विज जाति के सिवाय कोई द्विज नहीं कहा सकता है। जो द्विज है उसका द्विजत्व अर्थात् विशेषता द्विज जाति हेतु से नहीं हो सकता है स्वाध्याय से नहीं हो सकता है एवं विद्या से भी नहीं हो सकता है वह विशेषता तो केवल कर्तव्य का ग्रहण और अकर्तव्य त्याग मूलक ही है, और किसी सबब से नहीं।

जे० पी०---भागवत स्कन्ध ५ अ० १-२२ शुक्राचार्य ब्राह्मण ने अपना विवाह राजा प्रियव्रत (क्षत्रिय) की ऊर्जस्वती नाम्नी कन्या से किया था, और उससे एक कन्या देवयानी नाम की उत्पन्न की। जिसका विवाह ययाति राजा से हुआ था उसकी सन्तान क्षत्रिय कहलाई।

खण्डन---यह बात तो स्मार्त्त सिद्धान्त से मिलती है जैसे कि---**विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः वैश्यस्य वर्णेचैकस्मिन् षडेतेऽपसदाः स्मृताः।।** मनु० अ० १० श्लो० १० ।। इससे सिद्ध हुवा कि ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकता है। उससे उत्पन्न सन्तान की जाति कौन होगी। इस पर लिखते हैं---**स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान् सुतान्। सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ।। १० । ६ ।।** ऐसेही---**पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम्। ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ।। १० । १४ ।।** इन दोनों श्लोकों से सिद्ध हुआ कि उत्कृष्ट जाति के पुरुष से उसकी अपेक्षा निकृष्ट जाति की स्त्री में उत्पन्न होने वाली सन्तान मातृ जाति की ही समझी जाती है इस नियमानुसार ब्राह्मण से क्षत्रिया में उत्पन्न कन्या क्षत्रिय जाति की ही रही पुनः उससे क्षत्रिय राजा विवाह कर सन्तान उत्पन्न किया वह सन्तान क्षत्रिय कहलाई सो ठीक ही है। इसमें आपत्ति क्या ?

जे० पी०---आदि ब्रह्म पुराण अ० ६-२४ शुक्राचार्य भृगु मुनि के पुत्र

थे। भृगु अङ्गिरा के पुत्र थे। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी (जो ऊर्जस्वती के पेट से हुई थी) ययाति से ब्याही गई। इससे जो वंश चला वह क्षत्रिय वश प्रसिद्ध हुआ।

खण्डन—जबकि क्षत्रिय कन्या ऊर्जस्वती से शुक्राचार्य ने देवयानी उत्पन्न की थी उससे क्षत्रिय राजा ययाति ने विवाह किया। उससे जो सन्तान होगी वह क्षत्रिय नहीं तो और क्या कहला सकती है ? सो आपही कहें।

जे० पी०—चन्द्र वंश भागवत ९-१५, २५ चन्द्रमाने वृहस्पति की स्त्री को हरण किया और उससे बुध नाम को पुत्र उत्पन्न किया। बुध का इला से व्यभिचारवत् सम्बन्ध हुआ। उससे पुरूरवा पैदा हुआ। पुरूरवाने उर्वशी नाम वैश्या से व्यभिचारवत् सम्बन्ध किया। उससे ६ पुत्र हुए। इसी वंश के विश्वामित्र थे। इनसे ब्राह्मण वंश चला है। इसी वंश के ययाति थे। जिसने शुक्राचार्य ब्राह्मण की कन्या से विवाह किया था। इसी वंश में यादव, पाण्डव, कौरव आदि थे। लोग विचार करें कि यहां जन्मपरक वर्ण व्यवस्था कहां है ? क्या कोई इन्हें वर्ण सङ्कर कहता है ?

खण्डन—आप जिस भागवत की कथा प्रमाण स्वरूप उपस्थित करते हैं वहां के तप: प्रभाव और जन्मान्तरीय संचित कर्म प्रभाव को आप भूल जाते हैं। उदाहरणार्थ उसी स्कन्ध के छठे अध्याय की युवनाश्व की कथा की सङ्गति तो देखिये, वहां लिखा है—सन्तान रहित युवनाश्व बन में गया, वहां मुनियों ने उसे इन्द्र देवता का यज्ञ कराया। एक समय में रात में प्यासे उसने यज्ञशाला में जाकर पुंसवन के लिये अभि मन्त्रित जल को पीलिया। बाद यह खबर होताओं को हुई। मुनि लोगों ने परमात्मा से प्रार्थना की किन्तु आख़िर उन्हे दैव बल प्रबल मानना पड़ा। आखिर समय पूर्ण होने पर युवनाश्व की कुक्षि विदीर्ण कर पुत्र उत्पन्न हुआ,⋯⋯आगे जो भी कुछ हुआ, सो लिखने का प्रयोजन तो सिर्फ उस तप: प्रभाव से है जिससे कि जनन गर्भ ग्रहण शक्ति से शून्य पुरुष को भी प्रसव कार्य सम्पन्न करना पड़ा, फिर आप जाति टटोलते फिरते हैं सो भी अप्रशस्त

रीति से आपकी सूचनानुसार मैंने चन्द्रवंश भागवत स्कं० ९ वां अ० १५ वां को देखा उसमें सोमवंश की बात नहीं हैं। १४ वें अध्याय में इसप्रकार लिखा है—श्रीशुक उवाच—**अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः। यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः॥ १॥ सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात्। जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः॥ २॥ तस्य पुत्रोऽभवद् दृग्भ्यः सोमोऽमृतमयः किल। विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः॥३॥ सोऽयजद् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम्। पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाऽहरद्बलात्॥४॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात्। नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः॥ ५॥** इत्यादि आपकी लिखी कथा है लेकिन इससे लोग जन्मपरक वर्ण व्यवस्था क्यों न समझेंगे। जबकि—**अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः।** यह सिद्धान्त है फिर देव और मानुषी में होने वाली सन्तान वर्णसंकर क्यों समझी जाय! शुक्राचार्य ब्राह्मण की लड़की से ययाति ने ब्याह किया, सो तो आपने लिख दिया उसीके साथ यह क्यों नहीं लिखा कि शुक्राचार्य ने ऊर्जस्वती नामकी क्षत्रिय कन्या से विवाह कर इस लड़की को पैदा किया था, उससे अगर ययातिने शादी की तो कौनसा अन्याय किया?

. . . .

इसीप्रकार की बातें आपने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २० से पृष्ठ २३ तक में लिखीं हैं जिनमें स्थूलाक्षरों में श्रीभागवत, देवीभागवत, लिङ्गपुराण, आदिपुराण ब्रह्मपुराण, शिवपुराण के उदाहरण आपने दिये हैं। वे सबके सब पूर्व के उत्तर में गतार्थ हैं। आपकी इन बातों में तनिक भी नवीनता या मौलिकता नहीं है। अतएव मैं इसका खण्डन—प्रयास व्यर्थ समझता हूं। क्योंकि मैं स्मृति प्रमाणों से सिद्ध कर आया हूं कि जाति परिवर्तन का कारण एकान्तर्य में विवाहाधिकार और फिर उससे उत्पन्न सन्तानों का उच्च जाति से सम्बन्ध इस नियम से सातवें व पांचवें जन्म में जाति बदल जाती है। इसके सिवा तपः प्रभाव प्रधान

कारण है ही ! इस हालत में इने गिने जाति परिवर्तन के उदाहरणों से आपका सर्वथा जातिध्वंसवाद साबित नहीं होता है। अथवा जन्मपरक जातिवाद कहीं नहीं जाता। इस विषय में यद्वातद्वा बोलकर वस्तुस्थिति पर परदा डालना है।

जे० पी०—क्षत्रप, शक, हूण, खश, मग. कुशन आदि विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किया और यहां राजा बन बैठे, धीरे २ ये सब क्षत्रियों में मिल गये। हूण जो ३६ राजकुलों में गिना जाता है पहले म्लेच्छ था। ऐसी दशा में जन्मपरक व्यवस्था कहां रही ?

खण्डन—उपरोक्त विदेशियों का जिसी रूप से भारत पर आक्रमण हुआ उसी रूप में भारत में रहना और आखिर में लुप्त होना भी सिद्ध है। उन सबों का क्षत्रियों में मिलने का कोई प्रमाण नहीं है। यह केवल आपकी कल्पना है हां अलबत्ता यमन राज्य से पूर्वकाल के राजा अपनी विरुदावली क्षत्रियों के समान जोड़ लेते थे। और कभी २ कन्या का आदान प्रदान स्वेच्छा से कर लेते थे। इससे वे क्षत्रियों में मिले नहीं कहे जांयगे।

जे० पी०—हमने इतने उदाहरण ऊपर दिये जिससे स्पष्ट हो गया कि पौराणिकों का दावा एक दम गलत है। पहले सब वर्ण परस्पर शादी करते थे। उनकी सन्तान वर्णसङ्कर नहीं कहलाती थी। यदि वर्णसंकर माने तो आज ब्राह्मणों क्षत्रियों को अपने को क्या मानना पड़ेगा ? क्योंकि ऊपर के प्रमाणों से ब्राह्मणों से क्षत्रिय तथा क्षत्रियों से ब्राह्मण वंश चला हुआ दिखलाया गया है। इसलिये जो लोग तेली आदि अनेक वैश्य जातियों को वर्णसंकर कहते है, उन्हें पहले अपने वंश के ऊपर ध्यान रख लेना चाहिए।

खण्डन—यही तो आपका भ्रम है, आपने जो ऊपर उदाहरण दिये हैं उन उदाहरणों से पौराणिकों का दावा गलत सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि आप जिसे पौराणिकों का दावा कहते हैं वह तो श्रौत स्मार्त और विश्वजनन अनुभव से समस्त संसार का सर्वस्व और धर्मशास्त्र का आदेश है। जो जातीय व्यवस्था विश्व के आरम्भ काल से आजतक सामाजिक दृढ़ बन्धनों से सर्वथा रक्षित होती आई

है। उस पवित्र व्यवस्था को आज आप लुप्त करवाते हैं। हम मानते हैं कि आपके उदाहरणों से क्षत्रिय से ब्राह्मण व ब्राह्मणों से शूद्र होना सिद्ध होता है। लेकिन यह परिवर्तन किस कारण से हुआ सो तो आप नहीं दिखा रहे हैं। स्पष्ट बात है कि–उग्र तपस्या मुनियों का शाप जन्मान्तरीय सञ्चित शुभाशुभ कर्म एवं सविधि बीज सम्बन्ध बस सिर्फ इन्हीं कारणों से परिवर्तन हुआ है। इस विषय में संक्षिप्त सिद्धान्त फिर आप भगवान मनु आदि महर्षियों के वचनों से ही कर लीजिये जैसे कि याज्ञवल्क्यजी 'वर्णजाति–विवेक' प्रकरण में लिखते हैं—

सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः। अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्धनाः॥ अर्थात् सजातीय पुरुष से सजातीय स्त्री में सविधि विवाह के द्वारा उत्पन्न हुई सन्तान अपने कुलको बढ़ाती है। अविधि विवाह से अगर सन्तान होगी अथवा कुमारी अवस्था में ही सन्तान उत्पन्न होगी तो वह कुण्ड (पति के रहते व्यभिचार से उत्पन्न) गोलक (विधवा अवस्था में उत्पन्न) कानीन (कुमारी अवस्था का पुत्र) इत्यादि संज्ञायें हैं, उन सन्तानों में सवर्णता या सजातीयता नहीं रहती हैं। वह सङ्करजातिय कहलाती है। जिसलिये कि दो जाति के स्त्री पुरुषों ने परस्पर सम्बन्ध से जाति का सांकर्य अर्थात् एकीकरण किया इसलिये उस जाति साङ्कर्य में उत्पन्न हुई सन्तान सङ्करजाति की कहलाती है। सङ्करजाति के दो भेद हैं एक अनुलोम सङ्कर और प्रतिलोम सङ्कर इन दोनोंमें उच्च जाति का पुरुष से अपनी अपेक्षा नीच जाति की स्त्री में उत्पन्न सन्तान अनुलोम संकर और ठीक इसके विपरीत उच्च जाति की स्त्री में नीच जाति के पुरुष से उत्पन्न सन्तान प्रतिलोम संकर कहलाती है। अनुलोम संकर सत्सेवा आदि सत्कर्म करके सच्छूद्र कोटि में आजाता है किन्तु प्रतिलोम संकर सन्तान सिर्फ अहिंसा आदि साधारण धर्मों का ही अधिकारी होती है। वह असच्छूद्र और पात्र से बहिष्कृत है। इस बात को मनु और याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों में खूब विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। सन्देह का कोई अवसर नहीं जिसे खुशी हो उस प्रकरण को पढ़ लेवे। उससे सिद्ध होता है कि चारों युग चारों वेद के चार वर्ण

चार आश्रम सिद्ध हैं। इसके बाद अनुलोम संकर प्रतिलोम संकर सकीर्ण संकर इस भेदों से चार वर्ण के स्थान में चार हजार तक जाति संख्या होगई होगी। उन सबों की मौलिकता के साथ जुदी जाति-कल्पना चली आरही है। जिस समय में भारत निवासी आर्य और स्वर्ग के देव दोनों समानता रखते थे, तन्मयता और दृढ़ता से तपस्या की जाती थी, प्रत्येक व्यक्ति मूर्तिमान् धर्म होने के लायक थे। उस समय की कुल सम्बन्धी कथा से आज आप जातीयता की जड़ ही खोद फेंकना चाहते हैं। देखिये मनुजी स्पष्ट कहते हैं—**तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥** १०। ४२॥ अर्थात् जो सन्तान सजाति से उत्पन्न हुई है अथवा विजातीय से उत्पन्न है वह कृत युगादि काल में तपः प्रभाव से और बीज प्रभाव से उच्चता और नीचता को जाति के द्वारा प्राप्त करेगी। इस रीति से आज अगर कोई अपनी जाति का परिबर्तन कर सकता हो तो करे। स्मृति को प्रमाण मानने वाले उस परिवर्तन को मानेंगे। लेकिन आपका सिद्धान्त तो यह है कि जाति कोई वस्तु ही नहीं है। तथापि ब्राह्मण की नकल करके सब क्षत्रिय ही ब्राह्मण बन जाय, आपही कहिये कि आपके कौन से बचनों से यह आपका सिद्धान्त सिद्ध होता है। आप तो चातुर्वर्ण्य की सत्ता मानते ही हैं, सम्बन्ध सांकर्य की कथाओं से प्रथम जातीय संश्लेषण पुनः उसके अवान्तर भेद से विश्लेषण सिद्ध हो ही रहा है। इस वस्तु स्थिति में आप धारा प्रवाह से शूद्र को क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण बनाना चाहते है यह एक आश्चर्य की बात है। सबसे विशेष ताज्जुब की बात तो आपकी यह है—कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों जातियां चूक कर भी वर्ण संकर नहीं कहे ? क्यों कि खुद ब्राह्मण आदि पर भी इस प्रकार की वर्ण संकरता का दोष आजायगा क्योंकि कई क्षत्रिय वंश से ब्राह्मण वंश और ब्राह्मण वंश से क्षत्रिय वंश चला है। भला इतना सोचने तक काभी परिश्रम आपने नहीं उठाया कि क्या किसी कारण वश किसी परिमित ब्राह्मण क्षत्रिय कुल अनुलोमता से या प्रतिलोमता से परस्पर बदल गया ? तो क्या इसी से सारी ब्राह्मण क्षत्रिय

जातियां वर्ण संकर होगई। जिस तेली का नाम आपने लिया है—उसीका जाति निरूपण आप देखिये। औशनसमृति में लिखा है—वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याज्जातश्चक्री च उच्यते। तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन् पुनः॥ अर्थात् चोरी से शूद्र पुरुष और वैश्यजातीय स्त्री इन दोनों से उत्पन्न सन्तान तेली जाति की है उसकी जीविका तेल पेलना खली वेचना, आदि है। जब इस तरह स्पष्ट प्रतिलोम संकर तेली जाति सिद्ध है फिर उसे पूछने पर क्यों न कहा जायगा। कुल परम्परा से विशुद्ध ब्राह्मण विशुद्ध क्षत्रिय, निर्मल वैश्य व सच्छूद्र पहले थे वैसे ही आज हैं फिर क्या वजह कि संकर जाति को संकर कहने से सभी ब्राह्मणादिकों पर सांकर्य का दोष आवेगा? यह विचारने की बात है।

जें॰ पी॰—अब शास्त्रों का प्रमाण फिर देते हैं। चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः ॥ गीता अ॰ ४ श्लो॰ १३ ॥ चारों वर्ण गुण कर्म विभाग से मैंने उत्पन्न किये हैं। सृष्टि के आदि में भी वर्ण विभाग इसी प्रकार हुआ था—न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्। ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतम्। कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः। त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥ गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः। स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः। हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥ इसका हिन्दी अनुवाद भी है।

खण्डन—गीता का "गुण कर्मों के विभाग से चारों वर्णों की सृष्टि मैंने की" इस तरह का वचन ठीक ही है क्योंकि रजोगुण तमोगुण सत्वगुण अथवा शौर्य औदार्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, धैर्य आदिगुण से और शुभाशुभ प्राक्तन कर्मों से तो जाति की सृष्टि है ही आत्मा! अनादि उसका ज्ञान नित्य अतएव उसके गुण कर्म भी अनादि नित्य ही है। इसके नियन्ता, सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ, सनातन परमात्मा ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं। सृष्टि की आदि में जो आप प्रमाण देते हैं कि

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्। ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतम् ॥ अर्थात् वर्णों में कोई विशेषता नहीं है ब्रह्माजी ने आरम्भ में ब्राह्म जगत् बनाया जो कि कर्म से वर्ण बन गया। यहां सोचना चाहिये कि—**वर्णानां विशेषो नास्ति**। इस वाक्य में अर्थापत्ति से सिद्ध है कि—**वर्णाः सन्ति तत्सम्बन्धी विशेषो नास्ति**। अर्थात् चारों वर्ण हैं। किन्तु उनमें परस्परापेक्षा से विशेष कोई नहीं है। वे चारों वर्ण अपने कर्म से वर्णता वर्ण की विशेषता को प्राप्त किये हैं इस विवरण से यह सिद्ध नहीं होता कि तात्कालिक कपोल कल्पना से कर्म करके कोई शूद्र से क्षत्रिय और क्षत्रिय से ब्राह्मण बन सकता है। ऐसा अगर आप दृढ़ किये बैठे हैं तो यह आपकी मिथ्यामति और अनुचित कल्पना है। शास्त्रोंमें जो लिखा है कि असुक कर्म से शूद्र हो जाता है। उस वचन का अभिप्राय केवल द्विजातियों को उस कर्म से पराङ् मुख रखना मात्र है। शास्त्रीय सिद्धान्त से महापातक प्रायश्चित्त की अवस्था में ही जाति नष्ट होती है, अन्यथा नहीं। अन्य पापों से लौकिक वैदिक कर्मों में अनर्हता होती है। सो आप प्रायश्चित्त ग्रन्थों में देखें, यह भेद आपको साफ मालूम पड़ेगा। पृष्ठ २५ में जो आपने—**शूद्रो ब्राह्मणतामेति** ॥ मनु० अ० १० ६५ लिखा है और—**कर्मशीलगुणाः पूज्यास्तथा जातिकुले नहि। नात्मना न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते**। शुक्रनीति का वचनलिखा है ऐसे ही—**योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरु श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः**। मनु० अ० २ श्लो० १६८। इनवचनों पर हमें जो कहना था सो कह चुके। फिर आप यह समझें कि इन वचनों में केवल सन्ध्या में अवश्य प्रवृत्ति कराने के लिये भीति-प्रदर्शन मात्र शक्ति है और कुछ नहीं। व्यवहार भी इसमें प्रमाण है कि सन्ध्या नहीं करने वाला एक भी ब्राह्मण शूद्र नहीं समझा जाता है। या न समझा गया हो। शुक्र नीतिका जो वचन आपने लिखा है उससे तो कर्म, शील, गुण, जाति, कुल ये सब सिद्ध होते हैं। इन सबों में कर्म, शील, गुण इन तीनों की तारीफ है जाति और कुल की नहीं,

यह बात तो साफ है कि नीति में कर्म शील, गुणों की ही प्रसंशा रहेगी और जाति, कुल की नहीं। क्योंकि जाति और जात्याश्रित कर्मों का विधान तो स्मृति ग्रन्थों में रहता है। आपने जो ॥ मनु० अ० २ श्लो० १६८ ॥ और १०३ संख्या के श्लोक ब्राह्मणों को शूद्र बनाने के लिय दिये हैं। सो इस तरह के वचन और हैं जैसे कि—**यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्। नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः॥** म० अ० २ श्लो० १२६। जो ब्राह्मण अभिवादन का प्रत्यभिवादन नहीं जानता है विद्वानों को चाहिये कि उसे अभिवादन नहीं करें क्योंकि जैसा शूद्र वैसा ही वह ब्राह्मण है। इस प्रकार वेद नहीं पढ़ना, सन्ध्या नहीं करना, प्रत्यभिवादन विधि नहीं जानना ये सब बातें निन्दित अवश्य हैं किन्तु जन्म और संस्कार जन्य जाति के नाशक नहीं हैं। अगर ऐसी बात होती तो—**यथाकाष्ठमयो हस्ती यथाचर्ममयो मृगः। यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥** म० अ० २ श्लो० १५७। **यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला। यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥१५८॥** अर्थात् जैसे लकड़ी का हाथी और चमड़े का मृग नाम मात्र का है वैसे ही अपढ़ ब्राह्मण भी नाम मात्र का ब्राह्मण है। यहां आप सोचिये कि नाम मात्रसे भी तो वह ब्राह्मण ही है शूद्र तो नहीं बना। ऐसे ही जिस तरह स्त्री के लिये नपुंसक और गौके लिये गौ काम—वासनार्थ व्यर्थ है? वैसे ही वेद रहित ब्राह्मण फल शून्य है। यहां वेद रहित को भी विप्र ही कहा गया है। किन्तु शूद्र नहीं, यह बात दूसरी है कि उससे श्रौत स्मार्त कर्म न होने से वह निष्फल है। और कहां तक कहें—"**वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना**" अर्थात् द्विजोंको साङ्गवेद पढ़ना चाहिये। इस विधिवाक्य में मनुजी ने द्विजोंको वेद पाठाधिकार दिया है। अगर वेद पढ़ने से ही द्विजत्व आता और नहीं पढ़ने से चला जाता तो फिर द्विज कह कर वेद पढ़ने को क्यों कहा जाता? आपके हिसाब से तो ऐसा लिखना उचित था कि शूद्र को वेद पढ़कर द्विज बनना

चाहिये। लेकिन ऐसा तो कहीं है ही नहीं। क्योंकि मनुने तो लिखा है कि—**उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती। सहि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ अ० ११ श्लो० ९८॥ ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामभिजायते। ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥९९॥ सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्। श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति॥ १००॥ तस्य कर्म विवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः। स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत्॥ १०२॥** यहां तो साफ कहा गया है कि ब्राह्मणों का देह जन्म मात्र से ही धर्म का अविनाशी शरीर है। क्योंकि वह ब्राह्मण धर्मके लिये ही उत्पन्न हुआ है। ब्राह्मण उत्पन्न होते ही संसार में सर्व श्रेष्ठ होता है। ब्राह्मणों को वर्ण विषयक कर्मज्ञान कराने के लिये ही यह मानव धर्मशास्त्र बनाया गया। इससे यह कैसे सिद्ध हुआ कि वेद पढ़ने से व सन्ध्या करने से और प्रत्यभिवादन विधि जानने से ही ब्राह्मण जाति बनती है अगर ऐसी बात होती तो जायमान को ही ब्राह्मण कैसे कहा गया। आप समझ रखिये कि वर्णाश्रित कर्मों के अभाव में भी—**जाति ब्राह्मण एव सः।** यह सिद्धान्त अबाधित ही रहेगा। तभी तो मनुजीने लिखा है कि **सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥११८॥** अर्थात् सिर्फ सावित्री मात्र जानने वाला और धर्मशास्त्रीय वचनों को मानने वाला ब्राह्मण उत्तम है और तीनों वेदों को जानने वाला स्वेच्छाचारी ब्राह्मण अच्छा नहीं है। कहिये अगर वेद न जानने वाला ब्राह्मण शूद्र हो जाता तो त्रिवेदज्ञ ब्राह्मण से सावित्री जानने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ कैसे? अत एव आपके मनु, शुक्रनीति, पाराशर, शंखस्मृति के वचन सिद्धान्त के बाह्य हैं। "**जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते**" इस भाव के सभी वचन शूद्र जाति विधायक नहीं है किन्तु वैदिक कर्म मात्र में अनर्हता साधक हैं सो आप पक्का समझें आपस्तम्ब धर्म सूत्र का जो वचन दिया है कि—'**अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते**

जाति परिवृत्तौ। अर्थात् अधर्म के आचरण से उत्तम वर्ण नीचवर्ण को प्राप्त हो जाता है। हो जाता है, अवश्य हो जाता है, पञ्च महापातक भी अधर्म हैं और उससे जाति नष्ट हो जाती है। तपस्या धर्मचर्या है, उससे जात्युत्कर्ष होता ही है।

भागवत का जो आपने वैशम्पायन युधिष्ठिर का संवाद दिया है—**पञ्च लक्षणसम्पन्न ईदृशो यो भवेद् द्विजः। तमहं ब्राह्मणं ब्रूयां शेषाः शूद्रा युधिष्ठिर॥ न कुलेन न जात्या वा क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्। चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर।** भागवत अर्थात् कुल जाति क्रिया से ब्राह्मण नहीं होता है और चाण्डाल अगर अपना वृत्तस्थ हो तो वह ब्राह्मण है, यह वचन अश्रद्धेय, अप्रस्तुत है। इसपर ऊहापोह व्यर्थ है। भक्ति प्रधान भागवत ग्रन्थ से जाति का निर्णय हास्यास्पद है, क्योंकि भागवत में तो लिखा है कि—**भक्तिः पुनाति मत्संस्थान् श्वपाकानपि जन्मतः।** अर्थात् भक्ति से जाति दोष दूर होता है।

जे० पी—**जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः। बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं, प्राप्ताः पूर्वंचयेऽद्विजाः॥गणिकागर्भसम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः। संस्कारस्तत्र कारणम्। ततो ब्राह्मणतां जातो विश्वामित्रो महातपाः। क्षत्रियःसोऽप्यथ तथा जातः ब्रह्मवंशस्य कारकः॥** महाभारत अनुशासन पर्व—व्यास मछाही से और श्वपाकी चाण्डाली से पराशर उत्पन्न हुए। और दूसरे भी जो पूर्व अद्विज थे ब्राह्मण हो गये। वैश्या के गर्भ से उत्पन्न महामुनि वशिष्ठ तप से ब्राह्मण होगये; क्योंकि ब्राह्मणत्व में संस्कार ही कारण है। क्षत्रिय कुलोत्पन्न महातपस्वी विश्वामित्र भी ब्राह्मण गोत्र के प्रवर्तक, ब्राह्मण होगये।

खण्डन—दुनियां जानती है कि आर्य समाजियों के पास जाति परिवर्तन में इतनी ही पौराणिक कथा में प्रमाण हैं जैसे कि मछाही से व्यास, चाण्डाली से पराशर, वैश्या से वशिष्ठ, क्षत्रियकुल से विश्वामित्र उत्पन्न होकर ब्राह्मण बन

गए, इसलिए संसार के सभी मनुष्य ब्राह्मण बन जाना चाहिए। यह अन्धेर की बात है आप यह तो सोचिये कि अगर मछाही, चाण्डाली, वैश्या आदि में ब्राह्मणोत्पत्ति करने की शक्ति थी तो उस दिन से फिर किसी मछाही ने दूसरा व्यास के समान पुत्र क्यों न उत्पन्न किया ? अथवा चाण्डाली से व्यास समान दूसरी सन्तान क्यों न हुई। आपके मतानुसार तो उस दिन से मछाह जाति ही लुप्त हो जानी चाहिये थी। क्योंकि अब आपके प्रमाणों से ऐसा ही होना चाहिये था, लेकिन न हुआ, न होगा ही। आपको चाहिये था कि पहले जातिवाद की दृढ़ता की तरफ देखते फिर परिवर्तनवाद लेते। किन्तु सो आप क्यों लेते बैठे ? आपको तो जाति ध्वंस करना है। आप जिस अनुशासन पर्व के वचन लिख रहे हैं क्या आपने वहां यह नहीं पढ़ा—(महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय २७ वां) युधिष्ठिरने भीष्म पितामह से पूछा—**क्षत्रियो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ॥ ३ ॥ ब्राह्मत्वं प्राप्नुयाद्येन तन्मे व्याख्यातुमर्हसि । तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा । ब्राह्मण्यमथचेदिच्छेत्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४ ॥** अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये सब जातियां जिस कारण से ब्राह्मण्य को प्राप्त करती हैं सो हमें कहें। क्या बड़ी तपस्या से, या शास्त्र से किससे ब्राह्मण्य मिलता है सो आप कृपा करके कहें इस प्रश्न पर भीष्म पितामह ने कहा कि—**ब्राह्मण्यं तात दुष्प्राप्यं वर्णैः क्षत्रादिभिस्त्रिभिः। परं हि सर्वभूतानां स्थानमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५ ॥ बह्वीस्तु संसरन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः, पार्याये तात कस्मिंश्चिद् ब्राह्मणो नाम जायते ॥ ६ ॥** अर्थात् हे तात ! क्षत्रियादिक त्रिवर्णों से ब्राह्मणत्व पाना परम कठिन है, किन्तु ब्राह्मण जाति सर्व जीवों का विश्राम स्थान है अर्थात् ब्राह्मण के द्वारा ही सबी भूतों का ऐहिक पारलौकिक सुख स्थिर रहता है ॥५॥ अनेक योनियों में बारम्बार जन्म लेने पर ही अनिर्वचनीय (सर्वश्रेष्ठ) पर्यायमें ब्राह्मण होकर ही जन्म लेता है ॥ ६ ॥ कहिये इस स्थिति में कोई शूद्र पर्याय वाला आदमी इसी देह में ब्राह्मण पर्याय में कैसे चला जायगा। अब परिवर्तन वादमें

इतिहास सुनिये—अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। मतङ्गस्य च संवादं गर्दभ्याश्च युधिष्ठिर ॥ ७ ॥ द्विजातेः कस्य चित्तात तुल्यवर्णः सुतस्त्वभूत्। मतङ्गो नाम नाम्ना वै सर्वैः समुदितैर्गुणैः ॥ ८ ॥ स यज्ञकारः कौन्तेय पित्रोत्सृष्टः परन्तप। प्रायाद्गर्दभयुक्तेन रथेनाप्याशुगामिना ॥ ९ ॥ सबालं गर्दभं राजन् वहन्तं मातुरन्तिके। निरविध्यत्प्रतोदेन नासिकायां पुनः पुनः ॥ १० ॥ तत्र तीव्रं व्रणं दृष्ट्वा गर्दभी पुत्र गृद्धिनी। उवाच माशुचः पुत्र चाण्डालस्त्वाधितिष्ठति ॥ ११ ॥ ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। आचार्यः सर्वभूतानां शास्ता किं प्रहरिष्यति ॥ १२ ॥ अयन्तु पापप्रकृतिर्बाले न कुरुते दयाम्। स्वयोनिं मानयत्येष भावो भावं नियच्छति ॥ १३ ॥ एतच्छ्रुत्वा मतङ्गस्तु दारुणं रासभीव यः। अवतीर्य रथात्तूर्णं रासभीं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ ब्रूहि रासभि कल्याणि माता मे येन दूषिता। कथं मां वेत्सि चाण्डालं क्षिप्रं रासभि संशमे ॥ १५ ॥ कथं मां वेत्सि चण्डालं ब्राह्मण्यं येन नश्यते। तत्त्वेनैतन्महा प्राज्ञे ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ १६ ॥ गर्दभ्युवाच। ब्राह्मण्यां वृषलेन त्वं मत्तायां नापितेन ह। जातस्त्वमसि चाण्डालो ब्राह्मण्यं तेन तेऽनशत् ॥ १७ ॥ एवमुक्तो मतङ्गस्तु प्रतिप्रायाद् गृहं प्रति। तमागतमभिप्रेक्ष्य पिता वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १८ ॥ मयात्वं यज्ञ संसिद्धौ नियुक्तो गुरु कर्मणि। कस्मात्प्रतिनिवृत्तोसि कच्चिन्न कुशलं तव ॥ १९ ॥ मतङ्ग उवाच अन्त्ययोनिरयोनिर्वा कथं सकुशली भवेत्। कुशलं तु कुतस्तस्य यस्येयं जननी पितः ॥ २० ॥ ब्राह्मण्यां वृषलाज्जातं पितर्वेदयतीव माम् अमानुषी गर्दभीयं तस्मात्तप्स्ये तपोमहत् ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वा सपितरं प्रतस्थे कृतनिश्चयः। ततो गत्वा महारण्यमतप्यत्सुमहत्तपः ॥ २२ ॥ ततः संतापयामास विबुधान् तपसान्वितः

मतङ्गः सुखसंप्राप्तुः स्थानं सुचरितादपि ॥ २३ ॥ तं तथा तपसा युक्तमुवाच हरिवाहनः। मतंग तप्स्यसे किंत्वं भोगानुत्सृज्य मानुषान् ॥ २४ ॥ वरं ददामि ते हन्त वृणुष्व त्वं यदिच्छसि। यच्चाप्यवाप्यं हृदि ते सर्वं तद्ब्रूहि माचिरम् ॥ २५ ॥ मतङ्ग उवाच— ब्राह्मण्यं कामयानोऽहमिदमारब्धवान् तपः। गच्छेयं तदवाप्येह वर एष वृतोमया ॥ २६ ॥ भीष्म उवाच—एतच्छ्रुत्वातु वचनं मतुवाच पुरन्दरः मतंग दुर्लभमिदं विप्रत्वं प्रार्थ्यतेत्त्वया ॥ २७ ॥ ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः। विनाशिष्यासि दुर्बुद्धे तदुपारम मा-चिरम् ॥ २८ ॥ श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोऽर्थं नातिवर्तते। तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विज शिष्यसि ॥ २९ ॥ देवताऽसुरमर्त्येषु यत्-पवित्रं परं स्मृतम्। चाण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथंचन ॥ ३० ॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः।

भीष्म उवाच—एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः। अतिष्ठदेक पादेन वर्षाणां शतमच्युतः ॥ १ ॥ तमुवाच ततः शक्रः पुनरेव महायशाः। ब्राह्मण्यं दुर्लभं तात प्रार्थमानो न लप्स्यसे ॥२॥ मतंग परमं स्थानं प्रार्थयन् विनशिष्यासि। माकृथाः साहसं पुत्र नैषधर्मपथस्तव ॥३॥ नहि शक्यं त्वयाप्राप्तुं ब्राह्मण्यमिह दुर्मते। अप्राप्यं प्रार्थयानोहि न चिराद्विनशिष्यसि ॥ ४ ॥ मतंग परमं-स्थानं वार्यमाणोऽसकृन्मया। चिकीर्षस्येव तपसा सर्वथा न भ-विष्यसि ॥ ५ ॥ तिर्यग्योनिगतः सर्वो मानुष्यं यदि गच्छति। सजायते पुल्कसोवा चाण्डलो वाप्यसंशयः ॥ ६ ॥ पुल्कसः पाप-योनिर्वा यः कश्चिदिहलक्ष्यते। स तस्यामेव सुचिरं मतंग परिव-र्तते ॥ ७ ॥ ततो दशशते काले लभते शूद्रतामपि। शूद्रयोनाव पि ततो बहुशः परिवर्तते ॥ ८ ॥ ततस्त्रिंशद् गुणेकाले लभते वैश्य-तामपि। वैश्यतायां चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ ९ ॥ ततः षष्ठि-

गुणे काले राजन्यो नाम जायते । ततः षष्ठिगुणे काले लभते ब्रह्म बन्धुताम् ॥ १० ॥ ब्रह्मबन्धुश्चिरं कालं ततस्तु परिवर्तते । ततस्तु द्विंशते काले लभते काण्डपृष्ठताम् ॥ ११ ॥ काण्डपृष्ठश्चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते । ततस्तु त्रिशते काले लभते जपतामपि ॥१२॥ तं च प्राप्य चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते । ततश्चतुश्शते काले श्रोत्रियो नाम जायते । श्रोत्रियत्वे चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥१३॥ नदेवं शोकहर्षौ तु कामद्वेषौ चपुत्रक । अतिमानातिवादौ च प्रविशेते द्विजाधम ॥१४॥ तांश्चेज्जयति शत्रून् स बदा प्रमोति सगदतिम् । अथ ते वै जयन्त्येनं तालाग्रादिव पात्यते । मतंग सम्प्रधार्यैवं यदहं त्वाम चूचुदम् । वृणुष्व काममन्यंत्वं ब्राह्मण्यंहि सुदुर्लभम ॥ इति अष्टाविंशोऽध्याय: ।

अनुवाद—यहां पर मतङ्ग और गदही का संवाद कहा जाता है । हे युधिष्ठिर किसी द्विजाति को मतङ्ग नाम का पुत्र हुआ, यद्यपि इस पुत्र का जन्म सांकर्य दोष से दुष्ट था फिर भी पिता ने मतङ्ग का संस्कार करके उसे अपनो सवर्ण बना लिया था । मतङ्ग गुणी भी था । एक समय में पिताने उसे यज्ञ करने के लिये नियुक्त किया । मतङ्ग ने गदहे के रथ में बैठकर यज्ञ साधन के लिये निकला । उस रथ में अपने पुत्र के साथ एक गदही भी जोती गई थी मतङ्गनें गदही के देखते ही उस गदही के पुत्र को तीखे शस्त्र से बारम्बार नाक में मारा जिससे गदहे को घाव होगया । उस घाव को देखकर मातृस्नेह से गदही को क्रोध हुआ । वह कहने लगी कि रे पुत्र ! तूं सोच मतकर, इस रथ पर चाण्डाल बैठा है । ब्राह्मण में इस तरह क्रूरता हो नहीं सकती है । ब्राह्मण तो दयाशील होता है । वह तो सर्व जीवों का शासक है वह कैसे मारता । यह मतङ्ग तो पाप प्रकृति है अतएव बच्चों पर भी दया नहीं करता है । यह अपनी दुर्योनि की रक्षा कर रहा है इसके जन्म स्वभाव से ऐसा दुस्स्वभाव हो रहा हैं । इस तरह गदही के दुर्वचन को सुनकर मतङ्ग शीघ्र रथ से उतरा और गदही से कहा कि अरे

गदही ! तू कह कि मेरी माता में क्या दोष हुआ कि जिससे मुझे चाण्डाल कह रही है। इस पर गदही ने कहा—प्रमत्त ब्राह्मणी में शूद्र नाई से तू उत्पन्न हुआ है जिससे तुम्हारा ब्राह्मणत्व चला गया। इस बात को सुनकर मतङ्ग अपने घर पर आया। उसे आता देखकर पिताने उससे पूछा कि तुझे तो यज्ञ सिद्धि के लिये भेजा था और होता नियत किया था फिर क्यों तू लौटा, कह कुशल तो है। मतङ्ग ने कहा—जो हमारे सदृश अन्त्यज है अथवा अज्ञातोत्पत्ति है वह कुशल युक्त कैसे होगा ? विशेषतया जिसकी माता ऐसी है। हे पिता ! देखिये, यह गदही मुझे ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न कह रही है। यह मानवी नहीं किन्तु गदही है अतएव बड़ी तपस्या करके मैं इस दोष से छूटूंगा। इस तरह पिता से कहकर दृढ़ निश्चय से वह तपस्या के लिये चला। एक घोर बनमें जाकर कठिन तपस्या करने लगा। उसने अपनी तीव्र तपस्या से देवों को भी सन्तप्त करदिया क्योंकि मतङ्ग सुचरित से भी उच्चस्थान चाहता था। तपस्या करता हुआ उसको इन्द्र ने पूछा कि अरे मतङ्ग ! तू मनुष्योचित भोगों को छोडकर तपस्या क्यों कर रहा है ? तुझे जो मांगना हो सो मांग, मैं वर देने को तैयार हूं। इस पर मतङ्ग ने कहा—ब्राह्मण जाति चाहता हुआ मैंने यह तपस्या की है। उसे पाकर मैं यहां से जाऊंगा। यही बरदान मैंने मांगा। इस बचनको सुनकर इन्द्रने मतङ्गसे कहा—तूने अति दुर्लभ ब्राह्मण जाति मांगी है। मैं समझता हूं कि इस ब्राह्मणत्व की फेरी में पड़कर तु नष्ट हो जायगा। जो सब जीवों में श्रेष्ठ है वह श्रेष्ठ ही रहेगा, तपस्या में यह शक्ति नहीं कि वह सृष्टि मर्यादा को लुप्त करदे, देखो जो ब्राह्मणपद देव, दानव मनुष्यों में श्रेष्ठ है वह पद चाण्डाल योनि में उत्पन्न हुआ भया तुम से हरगिज प्राप्त नहीं हो सकता है। २७ वां अध्याय समाप्त।

इस प्रकार इन्द्र से फटकार पाकर भी मतङ्ग ने सौ वर्ष तक एक पैर पर तपस्या की। फिर भी इन्द्र ने आकर कहा कि ब्राह्मण्य बहुत कठिन है तु उसे नहीं पासकता। तु ऐसा साहस मत कर, तेरा यह धर्म मार्ग नहीं है। इस हठ से तेरा नाश होगा। देख जाति की दृढ़ता—जब कोई जीव तिर्यग्योनि से मनुष्य

योनि में आता है तब वह पुल्कस व चाण्डाल होता है। इस पापयोनि में चिरकाल तक रहने के बाद एक हजार वर्ष बीतने पर वह शूद्र योनिमें आता है। वहां से भी ३० हजार वर्ष के बाद वैश्य योनिमें आता है। फिर वहां से ६० हजार वर्ष के बाद ब्राह्मणयोनि में जाता है। उस योनि में बहुत दिन रहने पर दोसौ वर्ष के बाद काण्ड पृष्ठ; फिर तीनसौ वर्ष के बाद जपता को प्राप्त करता हैं अर्थात् गायत्री जपने वाले ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है। वहां से चारसौ वर्ष बीतने पर श्रोत्रिय होता है। श्रोत्रियपना में भी बहुत दिन रहने पर फिर शोकहर्ष, काम द्वेष, अतिशयमान, अतिशयविवाद ये सब द्वन्द्व प्रविष्ट होकर द्विजाधम बना देते हैं। उन शत्रुओं को अगर ब्राह्मण जीत लेता है तो सद्गति में जाता है। अगर काम क्रोधादिक से जीता गया तो जैसे ताल वृक्ष के ऊपर से कोई गिरे ठीक वैसे ही ब्राह्मणत्व से गिर जाता है। जाति में ये युक्तियां हैं अतएव तूं ब्राह्मण जाति का लोभ छोड़कर दूसरा वर मांगले। २८ वां अध्याय स०।

इसके बाद २९ वें अध्याय में कथा यह है कि फिर मतङ्ग १००० एक हजार वर्ष तक एक पैर पर खड़ा रहा, इस बीच में इन्द्र देखने आये मतङ्गने इन्द्र से कहा कि अब भी में ब्राह्मण क्यों न बना? इन्द्र ने वही पुरानी बात कही कि तू ब्राह्मण नहीं बन सकता। इस पर शोकाकुल होकर मतङ्ग गया जाकर अँगूठे पर खड़ा रहा, सौ वर्ष तपस्या की आखिर अस्थिचर्मावशेष होकर वह जमीन पर गिरा। वर दाता इन्द्रने गिरते हुए उसे पकड़ा। और कहा कि अरे मतंग! तेरा ब्राह्मणत्व हमें विरुद्ध दीख पड़ता है। देख ब्राह्मण जाति पहले तो दुर्लभ, तिस पर भी काम क्रोधादि शत्रुओं से घिरा हुआ है। ब्राह्मण की पूजा करने वाला सुख पाता है, और निन्दा करने वाला दुःख पाता है। सभी जीवों को ब्राह्मण योग क्षेम देता हैं। ब्राह्मण से देवता पितर तृप्त होते हैं; अतएव सब जीवों से ब्राह्मण श्रेष्ठ है। फिर यहां स्पष्ट लिखा कि—**बह्वीस्तु संसरन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः। पर्याये तात कस्मिंश्चिद् ब्राह्मण्यमिह विन्दति॥ तदुत्सृज्येह दुष्प्राप्यं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः। अन्यं**

वरं वृणुष्व त्वं दुर्लभोऽयं हिते वरः । इस प्रकार बहुत से वाद विवाद के बाद मातंग ने यह वर मांगा कि मैं स्वेच्छा पूर्वक आकाशचारी वनूं और ब्राह्मण क्षत्रियों के बिना विरोध किये मैं पूजा पाऊँ । तथा मेरी अक्षय कीर्ति बनी रहे, इन्द्रने तथास्तु कहा । और अदृश्य हो गये ? ब्राह्मणपद मतंग को नहीं मिला । क्या कोई समझदार आदमी इस कथा को सुनकर यह विश्वास कर सकता है कि प्रथम तो जाति है ही नहीं अगर है तो बाजारू सौदा, चाहे सो खरीद लेवे । इस कथा के इन हिसाबों पर भी ध्यान देना चाहिये—तिर्यग्योनि से मनुष्ययोनि में पुल्कस, चाण्डाल आदि रूप से ही आना पडता है । उसके बाद हजार वर्ष पर शूद्रयोनि में शूद्रयोनि से तीस हजार वर्ष पर वैश्ययोनि में, वहां से साठि हजार वर्ष पर क्षत्रिययोनि में और वहां से साठि हजार वर्ष पर ब्राह्मण योनि में जन्म होता है । अब कहिये कि जहां जाति निरुपण इस प्रकार है । फिर आप किस बल पर जाति को जड़ से उखाड़ते हैं और तुरत जनेऊ कान्धे पर देकर द्विजाति करार देते हैं । इस प्रस्ताव से आप यह समझिये कि जाति अपरिवर्तनीय है । तभी तो मतंग ने भयङ्कर तप करके भी ब्राह्मणत्व नहीं पाया । जिसकी माता ब्राह्मणी थी पिता ने संस्कार कर दिये थे फिरभी—**कुले मुख्येपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसंकरः । संश्रयत्येव तच्छीलं नरो ल्पमपि वा बहु** ॥ इस नियमानुसार उसने क्रूरता दिखाई और एक निकृष्ट पशु गदही से पतापर पहुंचाया गया ।

३० वें अध्याय में सन्देह किया गया है कि एक तरफ ब्राह्मण्य को दुर्लभ बताते हैं । दूसरी तरफ सुनते हैं कि विश्वामित्र ने ब्राह्मण्य को प्राप्त किया है । साथ ही मैंने यह भी सुना है कि वीतहव्य नामका क्षत्रिय राजा भी ब्राह्मण बना । इसी भेद को सुनना चाहता हुँ । इस प्रश्न पर जो कथा कही गई है उसका संक्षेप यह हैं कि—वीतहव्य ने पुत्रों के मरने पर अपनी राजधानी छोड़ भृगु के आश्रम में भाग गया ॥ ४४ ॥ उस समय में भृगु ने उसे अभय शरण दिया ॥ ४५ ॥ उसके पीछे प्रतर्दन नामका राजा भी वहां पर आया ।

और बोला कि इस आश्रम में कौन है ? हे मुने ! मैं उसे जानना चाहता हूँ आप कहें । इस पर भृगु ने अपने आश्रम से निकलकर कहा कि क्या काम है सो आप कहें । राजा ने अपना आगमन का कारण कहा, साथ ही यह भी कहा कि आप वीतहव्य को अपने आश्रम से बाहर करदें, वह मेरा अपकारी शत्रु है । इस पर दयामय हृदय होकर भृगु ने कहा कि यहां एक भी क्षत्रिय नहीं है । यह तो ब्राह्मण का आश्रम है । यहां सब ब्राह्मण ही हैं। इस पर वीतहव्यने घर से निकल कर भृगु के चरण पकड़ लिये और कहने लगा कि मैं तो इससे भी कृतकृत्य हो गया, क्योंकि आपके सत्य वचन से अब मेरी क्षत्रिय जाति चली गई, अब मैं ब्राह्मण बना । ऐसा कहता हुआ—जैसे आया था वैसे ही लौट गया और भृगु के वचन से वह ब्रह्मर्षि बन गया ।

इस पर विचार उठता है कि इतना अनायास सहज कारण से वीतहव्य ब्राह्मण कैसे बना ? इस पर विचार करते हुए उत्तर रामचरित का—**अर्थं वागनुधावति** । और **'वाचमर्थोनुधावति'** इस वचन को सामने रखें अर्थात् दो प्रकार के ऋषि हैं एक वे जो होनहार अर्थ को बोलते हैं, दूसरे वे जो, जो कुछ बोलते हैं वह होकर ही रहता है । उस दिव्य अनन्त शक्ति ने तो त्रिशंकु, के लिये मध्य में ही स्वर्ग बना दिया, उस शक्ति ने तो ब्रह्मा से विरुद्ध सृष्टि चलादी. इन ऋषियों की शक्ति में वह शक्ति है जिसमें पांचाली के चीर निर्माण में तुरी, वेमाका काम नहीं पड़ा, जिस शक्ति में इस दृश्यमान विवर्त रचना के लिये लूका तन्तुवत् किसी कारण की आवश्यकता नहीं होती । अफसोस की बात है कि ऐसी दिव्यविभूति सम्बन्धी अलौकिक महिमा की आप यः कश्चित् नकल करना चाहते हैं । मैं जहां तक समझता हूँ ऐसी बेतुकी बातें बोलते हुए आपको खुद शरम होनी चाहिये थी ।

अब आप थोड़ा ३३ वें अध्याय के इन वचनों पर ध्यान दीजिये—**ब्राह्मणा यं प्रशंसन्ति पुरुषः स प्रवर्धते । ब्राह्मणैर्यः पराकृष्टः पराभूयात्क्षणाद्धि सः ॥२०॥** शकापवन कांबोजास्तास्ताः क्षत्रिय जातयः ।

वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥ २१ ॥ द्राविडाश्च कलिंगाश्च पुलिन्द्राश्चाप्युशीनराः । कोलिसर्पा माहिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ॥ २२ ॥ वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् । अयान् पराजयस्तेभ्यो न जयो जयतां वर ॥ २३ ॥......

न स जातोऽजनिष्यद्वा पृथिव्यामिह कश्चन । यो ब्राह्मणविरोधेन सुखं जीवितुमुत्सहेत् ॥ २६ ॥ दुग्राह्यो मुष्टिना वायुः दुःस्पर्शः पाणिना शशी । दुर्धरा पृथिवी राजन् दुर्जया ब्राह्मणा भुवि ॥२७॥

इस उपरोक्त वचनानुसार ब्राह्मणों से विरोध कर आप किसी की जाति को तरक्की पर नहीं ला सकते हैं । हां, अलबत्ता आप किसीकी असली जाति को नीचे गिरा सकते हैं, जैसे कि द्राविड़ आदि क्षत्रिय जाति ब्राह्मणों के असहयोग से शूद्र बन गई ।

महभारत अनुशासन पर्व में ३४ वां अध्याय ब्राह्मण प्रशंसा से ही भरा पड़ा है । ३५ वें अध्याय में ऐसे ब्राह्मण कौन है इस प्रश्न पर लिखते हैं कि—

जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते । नमस्यः सर्वभूतानाम् ।

अर्थात् जन्म से ही ब्राह्मण उत्पन्न होता है । यहां 'एव' शब्द कर्म को हटाता है । इसके बाद फिर आप ४६ वां और ४७ वां अध्याय पढ़ जांय आपको साफ मालूम होगा कि द्विजातियों को विवाह का अधिकार किस प्रकार है और दायभाग विभिन्न सन्तानों में किस तरह बांटा गया है । इससे भी आपको द्विजाति की सत्ता और मर्यादा पर विश्वास होगा । इसके साथ ही ४८ वां अध्याय पढ़कर मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति मिलाकर देखलें कि आपको अक्षर २ मिलता है या नहीं, फिर भी जो आप जाति उड़ाने की युक्ति पेश करते हैं, यह प्रमाणवाद नहीं किन्तु धृष्टवाद है ।

आपने पौराणिक दृष्टान्तों से जो जाति—परिवर्तनवाद दिखाया है वे सब दुस्तर तपः प्रभाव से सिद्ध हुए हैं, अतएव उन दृष्टान्तों से आज जाति को पलटना असंगत, असंभावित और अप्रमाणित है ।

जे० पी०—वेद में भी कहा है कि—**आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्॥ यजुर्वेद अ० २२ मं० २२।**

खण्डन—कोई भी समझ सकता है कि इस मन्त्र से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों द्विजातियों का उपादान है। ब्राह्मण राजन्य तो स्पष्ट ही है, बचे वैश्य, सो **दोग्ध्री धेनुः, अनड्वान् इच्छानुसार वृष्टि**। फलों की उत्पत्ति आदि वैश्य कर्म से वैश्य की सूचना है। फिर इससे आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं।

जे० पी०—वज्रसूची उपनिषद् में भी वर्ण व्यवस्था पर विचार किया है ऐसा कहकर आगे वह विचार संस्कृत और भाषानुवाद दोनों में दिये गये हैं पेज २९ और ३० में यह विषय भरा है जीव, देह, जाति, ज्ञान, धार्मिक ये सब ब्राह्मण नहीं हैं फिर ब्राह्मण कौन? इस पर कहा जाता है कि जो अद्वितीय जाति, क्रिया, गुणहीन सर्वदोषरहित, सत्यज्ञानाऽनन्ताऽऽनन्दस्वरूप, स्वयं निर्विकल्प, सम्पूर्ण कल्याण धारक, सर्वान्तर्यामी रूप से वर्तमान, बाहर भीतर वर्तमान......अनुभवमात्र से ज्ञातव्य हस्तामलकवत् परमात्मा को देखने वाला, ऐसे लक्षणों वाला जो है सो ही ब्राह्मण है। यही श्रुति, स्मृति, पुराणों का प्रमाण है अन्यथा ब्राह्मणत्व की सिद्धि ही नहीं है। इसके बाद आप लिखते हैं कि इत्यादि बहुत प्रमाणों से सिद्ध है कि वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभावानुसार ही जो मनुष्य जिस वर्ण के गुण, कर्म और स्वभावों को धारण करे वह उसी वर्ण में माना जावे।

खण्डन—आपने जो ऊपर वज्रसूचि उपनिषद् की वज्रग्रन्थि आगे रखी है उसी पर विचार करने पर सिद्ध होता है कि जाति एक ऐसी वस्तु है जिसका गुण, कर्म, स्वभाव से कोई मतलब नहीं, यह तो सिर्फ अनुभव मात्र से ज्ञातव्य है क्योंकि प्रतिव्यक्ति को अपनी जाति का अनुभव है ऐसे ही ओड़ोसी पड़ोसी देश वासी सभी को सभी की जाति का अनुभव है, अतएव जाति स्मृति प्रमाणों से और लौकिक अनुभव से जानने योग्य वस्तु है।

जे० पी०—अब आजकल के आधुनिक ब्राह्मणों पर एक दृष्टि दीजिए, इसके बाद आपने दाहिमा ब्राह्मण; कौशिक ब्राह्मण, अन्तर्वेदी ब्राह्मण, चित्तपावन ब्राह्मण, आदि का परिचय पृ० ३२ । ३३ में दिया है ।

खण्डन—यह तो एक स्वाभाविक बात है कि आज जो ब्राह्मणों में अवान्तर जातियां हजारों की संख्या में मिलती हैं, ये अवान्तर संज्ञायें बहुतसी आधुनिक कल्पित हैं और इनमें कई पौराणिक भेद हैं । आधुनिकों की संकेत जैसे गण्डारकर ने अपने व्याख्यान में कहा है कि सारस्वत गोड़ों ने नौका से नदी पार होते हुए चावलों की रोटी खाई । इस सबब से वे अपनी जाति में अवान्तर भिन्न जातीय समझे गये । इस तरह ब्राह्मणत्व इस सामान्य में विशेषता के विशेष कारण कहे गये हैं । इससे ब्राह्मण जाति कल्पित नहीं समझी जायगी, जिस कल्पना के बलपर आज आप शूद्र को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो चाहे बनाना चाहते हैं आप निश्चय समझिये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों जातियां अनादि हैं । यह किला आपसे नहीं ढहेगा । बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् बौद्ध चार्वाकादिक भी अपनी बड़ी २ धर्म पुस्तकें लिखकर भी मजहबी जोश खाकर ठण्डे रह गये। खण्डन का उनका तरीका भी हम आपको परिशिष्ट में दिखावेंगे, आपके लेखानुसार चितास्थान पर आये हुए कैवर्तोंको पवित्र कर परशुराम ने ब्राह्मण बनाया अतएव वे ब्राह्मण चित्तपावन कहाते हैं । यह पौराणिक कथा है उसके कोई लेखक हैं जिनका कोई समय होगा, उस समय में रुधिरमांस के हृदय रखने वालों में विद्याविवाद से मतभेद भी होगा, अतएव उन्होंने चित्तपावन ब्राह्मण के विरोध में वैसा लिख दिया । इससे आप क्या चाहते हैं । क्या आप खुद परशुराम बनोगे ! और सभी शूद्र को कैवर्त बनाकर किसी चिता के स्थान में खड़ाकर ब्राह्मण बना देंगे ! आपही प्रमाण देते हैं—**ब्राह्मण्यं च ततो दत्वा सर्वविद्या सुलक्षणम्** । जिनमें ऐसी शक्ति थी सर्व विद्या और उत्तम लक्षण के साथ ब्राह्मणत्व देते थे । उन्हींकी नकल आज आपभी करेंगे जिन्हें की सन्ध्या तक बिना फीस लिये सिखाने का अवकाश नहीं है और जो प्रचुर द्रव्य

पहले लेकर ही कन्धे पर जनेऊ देते हैं। रहने दीजिये उन दिनों की बात, क्या आप किसी भी आधुनिक इतिहास में दिखा दें कि विश्वामित्र की तरह और भी आपने जितने जाति परिवर्तन के उदाहरण दिखाये हैं उस तरीके से कितने क्षत्रिय ब्राह्मण बने। देखते हैं कि स्वाभाविक प्रेम से जो जिस जाति में उत्पन्न हुए हैं वे उसी में सन्तुष्ट हैं। उनके जातीय कर्म आत्मोद्धार के उपाय, अभिमान के गुंजायश सभी कुछ हैं। ब्राह्मण जाति में अगर जातीय गौरव उच्च है तो साथ ही कर्मों की अधिकता जगद्धित कामना, निरभिमानता, दीनता आदि भार भी तो हैं। स्मृति में तो यहां तक कहा गया है कि—**ब्राह्मणस्यतु देहोऽयं न कामार्थाय जायते। इह संक्लेश्य तपसः प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥** अर्थात्—ब्राह्मण का शरीर ऐश आराम के लिऐ नहीं है। वह तो यावज्जीवन तपः क्लेश उठावें, मरने के बाद ही स्वर्गीय सुख प्राप्त करे। इस तरह की कठिन ब्राह्मण जाति में आप किसी को क्यों घसीटते हैं। यह माना कि आज ब्राह्मणों में ब्राह्मण जातीय विशेषता नहीं रही। इससे क्या आप जाति ही लुप्त कर देंगे। आपमें अगर वाग्बल, संगठना बल, लेखबल है तो आप ब्राह्मण जातीय विशेषता का पुनरुज्जीवन करें। जिससे कि विद्योदय के साथ देश की सुदशा होगी। छोड़िये इन व्यर्थ प्रपंचों को।

जे० पी०—मग, शक, हूण, क्षत्रप आदि जातियों का भारत पर आक्रमण हुआ यह इतिहास प्रसिद्ध है। ये अन्यदेशीय और आर्य धर्म भिन्न पुरुष थे। जब शक लोग यहां राज्याधिकार पाकर क्षत्रिय बन गये तो अनेक लोग उनकी सहायता से ब्राह्मण बन गये। ये भी गुण कर्म स्वभाव ही से बने, नकि ब्राह्मण के मुँह से।

खण्डन—वे विदेशी आक्रमणकारी भारत के राजा बने, इस बात को हम मानते हैं लेकिन क्षत्रिय बने यह बात प्रामाणित नहीं। जैसे अपने से बने वैसेही बनते चले गये। उनके बनाये ब्राह्मण भी क्या तो उन्ही के साथ गायब होगये,

अथवा उन्हींके नाम से आज आप भी परिचय दे रहे हैं। सिद्धान्तानुसार उन्हें कुछ बनना उचित नहीं था, क्योंकि आखिर उनकी भी तो कोई जाति पूर्व की होगी। उन्हें वही भुगताना चाहिये था। हमतो प्राचीन इतिहास कार्यालय की तरफ से भूगर्भ से निकले हुए भग्नावशेष गृह निर्माण विधि से भी प्रामाणित पाते हैं कि वे वैदेशिक लोग अपने गृह निर्माण भी प्राचीन देशीय रीति से किये थे, खामखाह वे अपनी जाति ही कैसे बदल लिये। यह विश्वास करने लायक बात ही नहीं। अगर आपके ही विश्वास को मानलें कि उन लोगों ने जाती बदली तो इससे क्या मौलिक चातुर्वर्ण्य भी अपनी जाति बदल लें। यह दलील एक दम फिजूल है। यदि वे बन भी गये तो फिजूल किये। उन्होंने आर्यधर्म शास्त्र नहीं देखा और नहीं माना। तभी तो आज भी नकली क्षत्रिय, व ब्राह्मण समझे जाते हैं। वे अनार्य थे, अतएव आर्य बने, यहां के आर्यों को क्या गरज था कि वे ब्राह्मण से क्षत्रिय और क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। इस तरह के बननें से स्मृति विरोध होता है। जिससे कि स्वर्ग की हानि होती है। आप ऐसा लालच किसी को नहीं देवें।

जे० पी०—आभीर एक नीच जाति है (मनु० १०। १५) वे आभीर ब्राह्मण बन गये। इत्यादि—

खण्डन—ब्राह्मण से वैश्य कन्या में उत्पन्न सन्तान अम्बष्ट कहलाती है और अम्बष्ट कन्या में ब्राह्मण से उत्पन्न सन्तान आभीर कहलाती है। यह तो हुई आभीर जातीय स्मृति व्यवस्था। इस हिसाब से अगर उस अम्बष्ठ कन्या में ब्राह्मण से लड़की पैदा हो और उसका सम्बन्ध पुनः ब्राह्मण से हो तो इसी क्रम से उसका **पञ्चमे सप्तमेऽपि वा**। जात्युत्कर्ष हो सकता है। इस वस्तुस्थिति में अगर आभीर ब्राह्मण बन गया तो इसमें आश्चर्य क्या ? इस प्रकार वर्णव्यवस्था में आपको सन्देह हो तो आप "स्पर्श व्यवस्था" में ८ से १५ तक पढ़ें। आपको मालुम होगा कि ये जातियां किस तरह फैली हैं उसे जब आप पढ़ेंगे तो आपको स्कन्दपुराण, भविष्य पुराण की बातें स्पष्ट मालूम होंगी।

जे० पी०—भविष्य पुराण अध्याय ३८, ब्रह्माजी कहते हैं कि रूप, ऐश्वर्य, विद्या और जाति का अभिमान वृथा है क्योंकि यह जीव अनेक योनि में नट के समान देह वदलता है। फिर जाति का अभिमान कहां रहा ? अतएव बुद्धिमान् मनुष्य कभी जाति का अभिमान नहीं करें, क्योंकि जाति स्थिर नहीं रहती है। संस्कारों से भी ब्राह्मण नहीं बनता, क्योंकि देखते हैं कि गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, अन्नप्राशन, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, समावर्तन, विवाह आदि संस्कार होने पर भी तेज, आयुष्य नहीं बढ़ती और संस्कारहीनों की जिन्दगी नहीं घटती, सुख, दुःख, संस्कृत व असंस्कृतों को समान ही होता है। उत्तम संस्कार वाले पतित हो जाते हैं, नरक में जाते हैं। इसी स्थान में संस्कारहीन उत्तम चाल चलन से भले कहलाते हैं और स्वर्ग पाते हैं। जहां संस्कारयुक्त मनुष्य वेश्यागमन आदि दुर्व्यसनों में आसक्त रहते है वहां असंस्कृत मनुष्य सदाचारी बना रहता है। व्यास आदि मुनीश्वर संस्कारहीन होकर भी उत्तम आचरणों से ब्राह्मण श्रेष्ठ समझे गये। इससे संस्कार भी ब्राह्मणत्व के निमित्त नहीं बनसकते इत्यादि।

खण्डन—जन्म और संस्कार ये दो ही द्विज शब्द के प्रवृत्ति निमित्त हैं इस बात को दुनियां जानती है। सिर्फ दुनियां ही नहीं जानती, किन्तु इस बात को स्मृति ग्रन्थ भी स्पष्ट कहते हैं फिर भक्ति विह्वल और नाना विरुद्ध मतवादों का वर्णन करने वाले पुराण की कीमत ही क्या ? हम सनातनी तो स्मृति प्रमाणों से जन्म संस्कार दोनों ही मानते ही है, लेकिन आप आर्यसमाजी भी तो संस्कार मानते ही हैं। तभी तो आप शूद्रों को भी संस्कार रूप शान पर चढ़ा शुद्ध द्विज बनाना चाहते हैं फिर अपने विरोध में भी आप यह प्रमाण क्यों उपस्थित कर रहे हैं ? संस्कार की विशेषता स्मृति वचनों से सिद्ध है जैसे कि **त्रयो वर्णा द्विजातयः**। इस निश्चयानुसार अपने २ निर्धारित समय में यज्ञोपवीत नहीं होने पर मनु कहते हैं—**आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। आ द्वाविंशात् क्षत्र बन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥ २। ३८॥** अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के लिये क्रम से १६। २२। २४ वर्ष तक यज्ञोपवीत

संस्कार के लिये नियत है। इसके द्विगुण काल अर्थात् १६। २२। २४ तक उपनयन काल रहता है। उसके बाद—**अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथा-कालमसंस्कृताः सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः** ॥ २। ३९ ॥ इसके उपरान्त समय पर असंस्कृत रहने वाले सावित्रीपतित और शिष्टों से गर्हित व्रात्य कहलाते हैं। आपही कहिए कि अगर संस्कार में कोई महत्व ही नहीं रहता तो मनु महाराज असंस्कृतों को आर्य-विगर्हित और व्रात्य क्यों कहते ? हम तो देखते हैं कि मनुजी ने स्पष्ट कहा है कि—**वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्। कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च** ॥ २। २६ ॥ द्विजातिओं का माङ्गलिक वैदिक मन्त्रों से शरीर संस्कार करना चाहिये क्योंकि संस्कार उभयलोक में पवित्रकारक है। ऐसे ही—**गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः। बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते** ॥ २। २७ ॥ गर्भाधान सम्बन्धी हवनों से, जातकर्म से व चूड़ा कर्म से तथा उपनयन संस्कार से द्विजवर्णों का वैजिक-गर्भ-वासरूप पाप दूर होता है। इस प्रकार जहां सर्वज्ञानमय मनु महाराज इस तरह का माहात्म्य बता रहे हैं वहां पर आप संस्कारों की निरर्थकता एवं विपरीत फल-प्रदता—भविष्य पुराण से सिद्ध करते हैं। यह नास्तिक वाद है पुराण में तो सब वाद हैं। उन्हें आप कहां तक अपनाइयेगा। आपके दिये प्रमाणस्वरूप भविष्य पुराण के ३८। ३९ वें अध्याय दोनों के मजमून एक ही हैं। अर्थात् ब्राह्मण-त्वादि एक संकेत है वास्तव में सत्य नहीं है। इस प्रकार की बातें लिख देना यह कृत बुद्धिओं का काम नहीं है। यह तो एक बालक का सा हठ और नास्तिक का सा दुष्टवाद और धृष्टवाद है। भला जिन जातियों की रक्षा में लोग प्राणतक झोंक दिये जिन जातियों के अस्तित्वों को वेद कह रहे हैं स्मृतियां कह रही हैं। इतिहास पुराण सभी स्वीकार कर रहे हैं, विश्वजनीन व्यवहारों से जो प्रचारित परिपालित, सम्मानित हो रहा है, उसे आप कुतर्कों से मिटा दीजियेगा, यह नहीं चल सकता है।

जे० पी०—चार वर्णों के लक्षण और उनमें भेद होने का कारण (अ० ४०) ब्रह्माजी कहते हैं कि जिनमें गुण कोई छूटा नहीं हो और दोषों का लेश न हो वे ब्राह्मण कहलाते हैं। इस प्रकार के ब्राह्मण जगत् के हितके लिये उत्पन्न किये गये हैं। ब्रह्म के भक्त होने से ब्राह्मण! क्षत से रक्षा करने से क्षत्रिय! वार्ता का सेवन करने से वैश्य, और श्रुति से द्रुत होने से शूद्र कहलाये। क्षमा दमादिक गुण जिनमें देखा उनको सृष्टि के समय ब्राह्मण ठहराया। और बलवान् होकर जो रक्षा कार्य में दक्ष निकले वे मनुष्य क्षत्रिय कहलाये। जो धनोपार्जन में निपुण निकले उनकी संज्ञा वैश्य हुई। और जो निस्तेज और अल्पबल पुरुष सोचते और द्रवते हुए इन तीनों की सेवा में तत्पर हुए (वे शूद्र बने) इस भांति अपने २ स्वभाव के अनुसार वर्णों की कल्पना हुई। इसके बाद चारों वर्णों के निरनिराले स्वाभाविक कर्म लिखे गये हैं। तत्पश्चात् पुनः संवाद खड़ा कर लिखते हैं कि हे मुनीश्वरो! यह हमने तर्क से पूर्ण बचन जाति के विषय में कहा परन्तु जिस प्रकार दैव और पौरुष मिलकर कार्य सिद्ध होते हैं इसी प्रकार उत्तम जाति और सत्कर्म का योग होने से पूर्ण सिद्धि होती है।

खण्डन—आपके ऊपर शीर्षक से साबित है कि चार जातियां और उनके लक्षण मौजूद हैं। और ये भविष्य पुराण के तीन अध्यायों में तर्कवाद है। साफ कहा जाता है कि हे मुनीश्वरों! यह हमने तर्क से पूर्ण वचन जाति के विषय में कहा किन्तु दैव पौरुष के समान उत्तम जाति और सत्कर्म ये दोनों ही पुरुषार्थ सिद्धि में कारण हैं। कौन सहृदय विद्वान् इस प्रकरण से जाति की सता नहीं मानेगा जहां कि साफ लिखा है सृष्टि के समय क्षमा दमादि गुण जिनमें देखे गये वे ब्राह्मण कहलाये। इस तरह चारो वर्णों के नाम कर्म, अनादित्व, सब ही कहे गये हैं। उन्हें कल्पना कहना संकेत मानना सर्वथा अविमृश्यवादिता है। इसमें वास्तविकता का लेश भी नहीं है?

जे० पी०—" **आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्** " इस मन्त्र पर निरुक्त में यास्काचार्य ने एक इतिहास लिखा है—कुरुवंश में देवापि और शन्तनु दो

भाई हुए। इनमें शन्तनु छोटा था। उसको राजगद्दी पर लोगों ने बैठाया। देवापि तप करने लगा। तब शन्तनु के राज्य में १२ वर्ष का अकाल पड़ा। तब ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा। तुम लोगों ने पाप किया है कि बड़े भाई के रहते छोटे को गद्दी पर बिठलाया इसलिये वृष्टि नहीं होती है। इसलिये शन्तनु देवापि के पास गया और गद्दी पर बैठने को कहा तब देवापि ने कहा कि मैं तुम्हारा पुरोहित होकर यज्ञ कराऊँगा तब वृष्टि होगी। देवापि ने वैसा ही किया फिर वृष्टि हुई। निरुक्त के भाष्य में प्रश्न किया कि क्षत्रिय को यज्ञ कराने का कहां अधिकार है? इसका उत्तर स्वयं भाष्यकार ने दिया कि वह विश्वामित्र के समान ब्राह्मण हो गया था।

खण्डन—आपने इस सन्दर्भ से क्या सिद्ध किया? यही न कि क्षत्रिय हो कर यज्ञ क्यों कराया, क्योंकि यज्ञ कराने का अधिकार सिर्फ ब्राह्मण को है। इस सन्देह का उत्तर भाष्यकारने दिया कि पहले तपःप्रभाव से देवापि ने ब्राह्मणत्व पाया, फिर यज्ञ कराया। इसलिये आप चाहते हैं कि तपः प्रभाव के बिना भी आज सभी को ब्राह्मण बनादें अथवा इधर उधर के बचनों से और तर्कों से जाति झंझट ही उठादें? यह आपका अभीष्ट वहां तक सिद्ध नहीं होगा जहां तक कि भारत का जातीय गौरव और जात्याश्रित कर्म एवं जातीय मर्यादा कायम है। आप यह नहीं देखते कि जिस भाष्य की चर्चा आपने की उसमें आपत्कालिक भी क्षत्रियों का वर्ण विरुद्ध याजन कर्म असह्य हो गया। जब जाति कोई वस्तु ही नहीं रहती और वर्णाश्रित कर्म ही नहीं रहते। मनमाने कोई अपनी जाति बदल सकता, फिर तो "**नचाशङ्का नचोत्तरम्**" वाली बात थी? सन्देह करने का मतलब ही क्या था? इससे सिद्ध है कि जातियों की सत्ता, कर्म, जातीयाभिमान ये सब सनातन हैं। शास्त्रीय आज्ञा के सिवा जाति का परिवर्तन जाति ध्वंस का कार्य है।

जे० पी०— इतने प्रमाण पाठकों के सामने रखे गये। इन प्रमाणों से गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था सिद्ध है। साथ ही यह भी सिद्ध होगया कि वर्ण

परिवर्तन दो चार जन्म में नहीं किन्तु इसी जन्म में हो सकता है। यह भी सिद्ध हो गया कि ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण होना अकर्म के अधीन है।

जब तक पुराण रहेगा तब तक पौराणिक लोग इन प्रमाणों को अन्यथा नहीं कर सकते। वे अब इन प्रमाणों के रहते यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि ब्राह्मण से ब्राह्मणी में ब्राह्मण पैदा होता है। किन्तु उन्हें यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य से मनुष्य पैदा होता है अपने गुण कर्म स्वभावानुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र बनता है जन्म परक वर्ण व्यवस्था नित्य नहीं अनित्य है। ब्राह्मण क्षत्रिय का पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय हो सकता है यदि उनमें अपने वर्ण धर्म मौजूद हों सर्वत्र गुण कर्म ही प्रधान है। आशा है कि जनता इससे लाभ उठावेगी। और पौराणिक लोग अपना हठ छोड़कर वैदिक धर्म की शरण लेंगे।

खण्डन—आपके उपरोक्त प्रमाण एवं उदाहरणों से यह नहीं सिद्ध हुआ कि गुण कर्म स्वभाव से ही वर्ण व्यवस्था होनी चाहिये, क्योंकि गुण कर्म स्वभाव ये अस्थिर पदार्थ हैं, और जाति चिरस्थायी जन्मान्तरीय कर्मों से संचित एवं जन्मसंस्कार इन दोनों पर अवलम्बित है। इस सिद्धान्त का अपलाप आप कर नहीं सकते। गुण कर्म स्वभाव बदलते रहते हैं इस बात को हम उदाहरण के साथ सिद्ध कर चुके हैं, और जन्मान्तरीय संचित, और जन्म संस्कारों से सम्पन्न हुई जाति अविचल भाव से महाभारत अनुशासन पर्व ३८ वें अध्याय के अनुसार अनेक जन्मान्तरों से भोग्य है, ऐसी सुचिर स्थायी वस्तु की जड़ आप चंचल गुण कर्म स्वभाव को मानते हैं। जिससे कि हरएक आदमी की जाति प्रतिदिन सातबार पलट सकती है। ऐसी बात में प्रमाण देना परिहास करवाना है। दूसरी बात आप यह सिद्ध मानते हैं कि इसी जन्म में जाति बदल जाती है किन्तु दो चार जन्मों में नहीं। आपका निजी सिद्धान्त एक भी नहीं चलेगा, हां अलबत्ता स्मार्त सिद्धान्तों में आप चाहे सो सिद्धान्त निकाल सकते हैं। जाति विषय में जो स्मार्त सिद्धान्त है सो हम आपको दिखा चुके हैं। निष्कर्ष आप यह समझें कि 'त्रयो वर्णा द्विजातयः चतुर्थः शूद्रस्त्वेक जातिः पञ्चमो

वर्णो नास्ति ।' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों द्विजाति हैं। ये उपनयन संस्कार के योग्य हैं। चौथा शूद्र एक जाति है पांचवां वर्ण नहीं है। जो संकर जाति (सङ्कीर्ण) है उनकी तो जैसे घोड़े और गदही से उत्पन्न सन्तान की निराली खच्चर जाति होती है उसी तरह संकरों की भी जाति माता पिता से भिन्न होती है। विवाहित सवर्णा (समान जाति वाली) स्त्री में सवर्ण से अर्थात् सजातीय से उत्पन्न सन्तान सजातीय होती हैं इस स्मार्त नियम में इतनी मजबूती है कि सृष्टि के आदि से आजतक धारा प्रवाह से हरएक खानदान में यह नियम परिपालित होता आया है। और आचन्द्र दिवाकर रहेगा, क्योंकि निष्पक्षता मध्यस्थता, सर्वग्राह्यता आदि गुण इस नियम में कूट कूट कर भरा गया है अतः पर सांकर्य दोष से दूषित प्रजाओं के अनुलोम सङ्कर व प्रतिलोम सङ्कर ये दो भेद कहे गये हैं जैसे कि ब्राह्मण से क्षत्रियामें, क्षत्रिय से वैश्या स्त्री में, वैश्य से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न सन्तान पितृ जाति से निकृष्ट और मातृ जाति से उत्कृष्ट जाति की समझी जाती हैं। इनकी संज्ञायें धर्म शास्त्र में निर निराली हैं जैसे कि अम्बष्ठ, निषाद, पारशव, उग्र आदि संकर और संकीर्ण संकरों के अवान्तर भेद बहुत हैं किन्तु सारांश उन सबों का यही है कि अनुलोम संकर से अर्थात् उच्च जाति के पुरुष और उसकी अपेक्षा नीच जाति की स्त्री में उत्पन्न सन्तान स्पर्शार्ह अर्थात् ब्राह्मणानुरागी धार्मिक होने पर सच्छूद्र कोटि में गिनी जाती है इन संकरों में स्मार्त सिद्धान्तों से उच्च जाति के साथ सम्बन्ध स्थिर रहने पर पांचवें अथवा सातवें जन्म में उत्कृष्ट रूप में जाति पलट सकती है। इस प्रकार संकर जाति के बाद तीसरी संख्या है व्रात्यों की व्रात्य कहते हैं जैसे—द्विजातियों से सवर्णा स्त्री में उत्पन्न सन्तान संस्कार रहित होने पर व्रात्य होती है, इस मनु वचन में संस्कारों में विशेष उपनयन संस्कार ही लक्ष्य रखा गया है। इन व्रात्यों में भी अवान्तर बहुत भेद हैं। ये प्रायश्चित्तादि द्वारा शुद्ध होकर स्वजातिस्थ होते हैं। किन्तु प्रायश्चित्त काल की भी सीमा है। इसके बाद दो जातियों के परस्पर सांकर्य दोष के बिना भी वर्ण सङ्कर जातियां है यह बात कही गई है।

जैसें कि—**व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च। स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः।** अर्थात् वर्णों के व्यभिचार से और अविवाह्य कन्या से विवाह करने से और अपने जातीय कर्मों के त्यागने से वर्ण सङ्कर होता है। यहां विवाहाधिकार नहीं देखना और जाति कर्म का त्याग करना ये दो कारण वर्ण सङ्कर के और भी हैं। इसलिए वर्ण सङ्कर नाम से घृणा करने का कोई कारण नहीं। अपने जातीय कर्मों को दृढ़ता से धरना चाहिए, इसके बाद **शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेनच॥** यह भी जातिं से गिरने का कारण कहा है इस प्रकार निकृष्टा जाति होने के कारण कहे गये हैं एकदम जाति च्युत होने का कारण भी पञ्चमहापातक जातिभ्रंशकर आदि कर्म हैं। तत्पश्चात् निष्कर्ष यह निकाला गया है कि तपस्या प्रभाव और बीज प्रभाव से मनुष्यों में जाति द्वारा उन्नति व अवन्नति अवश्य हो सकती है। लेकिन इस वाक्य के केवल जाति परिवर्तन हो सकता है इसी अंश पर जोर देकर दिन में दसबार जाति परिवर्तन मानने में कोई प्रमाण नहीं। स्पष्ट बात है कि विश्वामित्र के समान तपस्या के प्रभाव से जाति सद्यः बदल सकती है। बीज प्रभाव से धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों से सम्बन्ध निबन्धन जाति परिवर्तन हो सकता है। किन्तु आपके सिद्धान्तानुसार गुण कर्म स्वभाव पर जाति नहीं बदल सकती है। आपके पास एक भी प्रमाण या उदाहरण इस तरह के नहीं हैं जिससे कि गुण कर्म स्वभाव से जाति परिवर्तन सिद्ध हो। आप ही कहिये कि क्या विश्वामित्र ने गुण कर्म स्वभाव ही पर अपनी जाति बदल ली। हम तो देखते हैं कि आप सभी जातीय परिवर्तन सम्बन्धी उदाहरणों में तपः प्रभाव कारण दिखाते गये हैं और उस उदाहरण के साथ ही हमने सर्वत्र यह सिद्ध कर दिया है कि जाति अपरिवर्तनीय है। फिर तपः सामर्थ्य तो सर्वातिशायी है। उस तपस्या से तो विधि विधान में भी कार्य कारण भाव बदला जा सकता है। जाति तो जन्मान्तरीय शुभाशुभ कर्माश्रित है और भोग मात्र ही से वेदनीय है। इसमें अगर तपस्या परिवर्तन कर दे तो कोई ताज्जुब की बात

नहीं। ताज्जुब की बात तो आप कहते हैं कि लौकिक अनुभव और वैदिक आज्ञा एक भी नहीं मानिये। सिर्फ गुणकर्म स्वभाव के अनुसार जाति पहचाना कीजिये, यह आप की बात एक भी प्रमाण से प्रमाणित नहीं है प्रत्युत सब प्रकार की बाधाओं से बाधित है जो कि आपको हर एक बातों के साथ हमारा खण्डन पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होगा।

आपने अपनी तरफ से इस प्रकरण को "वैदिक वर्णव्यवस्था" नाम रखा है। जो कि यहां समाप्त होता है। उस संहार में आपने लिखा है कि इन प्रमाणों से गुणकर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था सिद्ध है। यहां पर हमें खुशी होती है कि जो आप पहले सिद्धान्त कर आये कि धर्मशास्त्रों में चातुर्वर्ण्य की सत्ता में कोई प्रमाण नहीं सो ही आप यहां लिखते हैं कि इन प्रमाणों से वर्णव्यवस्था सिद्ध है. अब आपकी भूल कहें या हठ ? यह रही कि गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था होनी चाहिये। यह हठ ठीक नहीं क्योंकि इस बात में एक भी प्रमाण एक भी उदाहरण एक भी युक्ति खोजने पर भी नहीं मिलती। फिर ऐसे अप सिद्धान्तों को क्यों मानना चहिये।

अब आपका द्वितीय खण्ड "पौराणिक वर्णव्यवस्था" इस शीर्षक से चलता है।

इस पौराणिक वर्णव्यवस्था नामकी संज्ञा की सार्थकता पर हमें सन्देह है ऐसे ही पहले खण्ड के वैदिक वर्ण व्यवस्था पर भी है, किन्तु हमें उससे मतलब क्या हमें तो सिर्फ आपके युक्तिवादों की ओर देखना है। तदनुसार आप इस परिच्छेद में लिखते हैं कि—गुण कर्म स्वभाव से यह कोयरी जाति वैश्य है। क्योंकि वंश परम्परागत इसका व्यवसाय खेती है अब इस खण्ड में कुइरी, काछा, मुराव की पौराणिक वर्ण व्यवस्था दिखलाने का प्रयत्न करेंगे। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे हमारे इस परिश्रम को सफल करें।

खण्डन—जो चार जातियां मुख्य हैं। उनमें से कोयरी जाति सच्छूद्र रूपसे मिथिला में प्रख्यात हैं। और खास कोयरी जातियों की जातीय कर्मों से एवं

पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभावों से सच्छूद्र जाति सिद्ध है। फिर क्या वजह कि उस जाति को गुण कर्म स्वभाव की कसौटी पर कस कर वैश्य जाति में बदल डालें, अथवा उसकी चेष्टा करें। यह निरर्थक प्रयास है। शास्त्रीय मर्यादा और खानदानी मर्यादा पर क्रान्ति है। यह एक अक्षम्य अशान्ति है।। इस परिवर्तनवाद में प्रथम तो युक्तिवाद की ही परीक्षा करनी होगी तत्पश्चात् अगर परीक्षा से कोयरी वैश्य सिद्ध नहीं हुआ, फिर तो यह बकवाद व्यर्थ ही है। केवल वंश परम्परा गत खेती मात्र से वैश्य नहीं सिद्ध होता है। द्विजातियों के लिये तो नियत काल में नियत संस्कार चाहिये। अब आपका पौराणिक वर्णव्यवस्था देखें कि उससे क्या गुल खिलता है।

जे० पी०——यह संसार परिवर्तन शील है। दिन व रात्रि के समान परिवर्तन होना अटल है। कोई देश व कोई जाति संसार में न कभी उन्नति शील रही और न आगे रहेगी। परमात्मा जो कुछ करता है वह जगत् की भलाई के लिये ही करता है। परन्तु अज्ञानी मनुष्य उसे अन्यथा मान बैठता है। जो भारत कभी उन्नति शिखर पर चढा था जो भारतीय क्षत्रिय जाति इस भारत माता की सच्ची सन्तान थी। जो ब्राह्मण जाति विज्ञान में इतनी बढी चढी थी कि जिसकी कीर्तिकी पताका अन्य देशों में अब तक फहरा रही है वही भारत, वही ब्राह्मण क्षत्रिय जाति इतनी दुर्दशा ग्रस्त है कि जिसका वर्णन करने में लेखनी भी लज्जित होती है। भारत तो वही है नदी, पहाड़, नगर, तीर्थ, सब वे ही हैं परन्तु हम वे नहीं हैं।

खण्डन——भले ही संसार परिवर्तन शील है किन्तु जाति परिवर्तनशील नहीं है, किसी की उन्नति अवनति जन, धन, बल विद्या से हो सकती है किन्तु जाति से नहीं, क्योंकि अल्पसंख्यक, निर्धन, मूर्ख दुर्बल सभी की जाति पूर्ववत् बनी रहती है। क्योंकि जाति रक्षित रखने के लिये जन्म व संस्कार और इन दोनों के सिवाय खानदानी सत्कर्म ही पर्याप्त है। इसमें सांसारिक उन्नति अवनति होने का कोई खौफ ही नहीं है। उदाहरणार्थ विज्ञान में पीछे पड़ी हुई भी ब्राह्मण

जाति ज्यों की त्यों बनी है, परिस्थिति की प्रतिकूलता से तेज:प्रदर्शन में अक्षम हुई भी क्षत्रिय जाति क्षत्रिय ही कहलाती है। व्यापार एवं खेती में असफल भी वैश्य जाति वैश्य ही है। हम तो स्पष्ट देखते हैं कि राजनीति में परमुखापेक्षी भारत वर्ष आज वर्णव्यवस्था में दुनियां का आदर्श बना हैं। फिर यह कैसे माना जाय कि भारतीय अवनति में और सांसारिक परिवर्तन में जातियां भी शामिल हैं ; इस आर्यभूमि की यही तो विशेषता है कि सब अर्थों में परतन्त्र होकर भी धार्मिक एवं जातीय नियमों को अपने हाथ में रखा है। भले ही आप वे नहीं हैं, क्योंकि आर्य समाजी नाम की समाज में आप चले गये हैं और आप से अतिरिक्त तो प्रथम भारतीय फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र हैं, फरक है तो सिर्फ यही कि पहले स्वायत शासन थे अब परशासन चक्र में पड़े हैं। लेकिन इस से क्या ? जाति बदलने के लिये कोई राजा की आज्ञा नहीं है। अनुभव प्रमाण है कि समस्त हिन्दू जनता ने कुल परम्परा प्राप्त अपनी जाति की रक्षा प्राणपण से की व कर रही है। अन्य अवनति के साथ जाति परिवर्तन को जोड़ना, यह बादरायण सम्बन्ध है।

जे० पी०— पर इतनी अवनति क्यों हुई ? हमने अपने हाथ से अपने पैर में कुल्हाडी मारली है। हमारा निजका दोष है। भाग्य भगवान् को दोष देना उचित नहीं। यदि ब्राह्मण ईर्ष्या द्वेष लोभ अहंकार स्वार्थ में न फंसते। क्षत्रिय कामी, कुटिल, क्रियाहीन अन्धे न बनते यदि वेद विद्या का प्रचार भारत में रहता तो आज हमारी यह दशा नहीं होती। हम लोग अनेक कुसंस्कारों अन्ध विश्वासों के गुलाम बन बैठे। हम झूठ को सत्य और अधर्म को धर्म, समझ ने लगे। परिणाम यह हुआ कि हम लोग अपने को भूलगये। जिस देश, जिस जाति में इतना अन्धकार फैल गया हो वह देश उन्नति कैसे कर सकता है ?

खण्डन—हम लोगों में जो कुछ भ्रान्ति और अश्रद्धा एवं विपरीत भावनायें दिख पड़ती हैं, और उसका परिणाम स्वरूप जो अवनति हो रही है। इसके कारण हैं मजहब (सम्प्रदाय) के प्रवर्तक आचार्य। जिस समय में भारत में

निस्स्वार्थी सदुपदेशकों का अभाव हुआ, "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" यह सिद्धान्त जब लोगों के विस्मृत पथ में चला गया, फिर ऊठे सम्प्रदायाधीश महात्मा लोग, उन्होंने वेद के बहाने अपने मन के कहने लगे। चतुर्धा बद्ध भारतीय समाज सहस्रधा बन्ध गई। सनातन धर्म के शुद्ध मार्गों को परिश्रम से जानने वाले व श्रौतस्मार्त विधियों को समझाने वाले पण्डित पुरोहित लोग अपने २ स्थानों से देखते रहगये। निषेकादि श्मशानान्त संस्कारों के एवं प्रायश्चित्तों के तीव्र प्रचार ग्रीष्म ऋतु की नदी प्रवाह के समान प्रतिदिन क्षीण पड़ता गया। यह सब कुछ हुआ किन्तु हिन्दू जनता अपनी २ जाति दृढ़ता से, रखती आई है। सङ्कर से, व्रात्य से, ब्राह्मणादर्शन से, स्वकर्मत्यागसे; मुनि शाप से, महा पातक से इत्यादि अन्य कारणों से जो जातियां जिस रूप में आज कायम हैं। उनका जाति परिवर्तन बहुत प्राचीन काल से हुआ भया है। इन दो एक शताब्दी के जाति परिवर्तन का उदाहरण नहीं मिलता है। अतएव जाति परिवर्तन को ऐच्छिक व्यावहारिक बनाना भूल है।

जे० पी०—आजकल अहङ्कार बहुत बढ़गया है उस अभिमान के चलते एक जातीय आदमी दूसरी जाति वाले को नीच समझते हैं। यदि शास्त्र दृष्टिसे देखें तो वास्तविक बड़े आदमी कम मिलेंगे। हम नीच काम करके भी बड़े बनना चाहते हैं। और दूसरे को उत्तम काम करने वाले को भी नीच समझते हैं। इस अभिमान से देश का पतन होता जाता है। उंच नीच की परिभाषा तो कोई होनी चाहिये। वैदिक रीति से कोई जाति उंच नीच नहीं हो सकती है आचरणसे व्यक्ति विशेष बड़ा बन सकता है। उत्तमवर्ण का पुरुष अच्छे कर्मों से अच्छा, निन्दित कर्मों से नीच गिना जाता है। यही बात नीच कुलों में भी है। यह शास्त्र का सिद्धान्त है। इसलिये इस विवरण में सब बात खोलकर लिखना ही उचित होगा।

खण्डन—आजकल बुरी बातों की वृद्धि है, तदनुसार अहम्मन्यता भी बढ़ी है। उसके चलते किसी को घृणा की नजर से देखना उचित नहीं, परन्तु अच्छा

पन और बुरापन व्यक्तिमें, जातिमें, गुणमें, कर्ममें, स्वभावमें, सभी में हैं। तदनुसार जब वर्णों में दर्जा का विचार होगा तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों में क्रमिक विशेषता गिनी ही जायगी, जातीय विशेषता भी व्यक्ति बादमें ही सीमित नहीं रह सकती है। अधम कुल का आदमी शुभ काम से अच्छा गिना जायगा किन्तु ब्राह्मण का प्रतिनिधि नहीं बन सकता है। दान लेना, यज्ञ कराना, पढ़ाना ये तीनों कर्म ब्राह्मण जाति निष्ठ ही रहेंगे। क्योंकि यह धर्म शास्त्र की आज्ञा और लौकिक मर्यादा है।

जे॰ पी॰——भारतीय अनेक जातियां जो क्षत्रिय वंशज हैं द्वेषवशात् या अज्ञानवशात् शूद्र समझी जारही हैं। इसके कई एक कारण हैं किसी में धरौना (पुनर्विवाह) होता है। कोई हल जोतती है कोई कोई संस्कार हीन हैं। इत्यादि अनेक बातों को देखकर आजकल के शास्त्रानभिज्ञ पण्डित लोग उन्हें शूद्र कहा करते हैं और द्वेषवश उनके उन्नति मार्ग में बाधक होते हैं। इसलिये इन्हीं विषयों को लेकर दिखलाना चाहता हूं कि सनातन धर्म के अनुसार ये शूद्र नहीं हैं।

खण्डन—दुनियां जानती है कि दूसरों का समझना, और अपना दिल मानना ये दोनों दो भिन्न बातें हैं। अगर किसी क्षत्रिय को कोई ब्राह्मण द्वेष से शूद्र समझने लगा, इस सबब से यह क्षत्रिय अपने को शूद्र क्यों मानने लगा व्यक्ति का व्यक्ति से द्वेष हो सकता है। समस्त ब्राह्मण जाति ही द्वेष क्यों कर करने लगी? ब्राह्मण जाति भी दुश्मन मान लें फिर भी सन्देह होता है कि क्षत्रिय जाति क्योंकर अपनी जातीयता को तिलाञ्जलि देकर अपने क्षत्रिय को शूद्र समझने लगी? असल बात तो यह है कि सत्य छिपाया नहीं जा सकता है। ब्राह्मणादर्शन, क्रियालोप, प्रायश्चित्त–प्राप्ति आदि धर्मशास्त्रोक्त कारण रहने पर क्षत्रिय को खुद शूद्र बनना पड़ा, और सारी दुनियां उसे शूद्र समझने लगी। अब आप क्या दिखाते हैं? जिससे कि वे शूद्र नहीं समझे जायंगे सो युक्ति देखें।

जे० पी०—आज भारत में दो ही पक्ष हिन्दु धर्म के हैं, एक आर्यसमाज का वैदिक पक्ष, दूसरा सनातन धर्म के पौराणिक पक्ष,…… जो लोग पूर्वकाल की वर्णव्यवस्था तथा आधुनिक पौराणिक वर्णव्यवस्था का मिलान करेंगे उन्हें दोनों में जमीन आसमान का अन्तर मालूम होगा। लोग समझ जावेंगे कि ज़माना एकदम उलट सा गया है। परन्तु लोग पौराणिक बन्धनमें इतने जकड़े हुए हैं कि वे उससे आसानी से नहीं छूट सकते। अतः उसी पौराणिक विधि से यहां पर कोयरी, काछी, मुरावों की वर्णव्यवस्था दिखलानी आवश्यक है।

खण्डन—हिन्दू धर्म के दो पक्ष हों चाहे अनेक पक्ष, इससे क्या? आप आर्यसमाजी पक्ष पौराणिक पक्ष के विपक्ष में हैं, अतएव आप आर्यसमाजी रीति से नवीन कल्पित जाति बनाना चाहते हैं। इसमें और तरह से तो आप मैदान साफ पाते हैं सिर्फ आपको पौराणिक स्मार्त सनातन धर्म कांटा सा चुभता है। अतएव आप इसे दूर फेंकना चाहते हैं और सृष्टि की आदि से जकड़ी हुई जनता को अपने सनातन स्थान से भ्रष्टकर आर्यसमाजी जाल में फंसाना चाहते हैं और इसी को आप पौराणिक बन्धन से आसानी से छुडाना कहते हैं। किंतु यह बन्धन आपके छुड़ाये नहीं छूटेगा सो पक्का समझिये। जिस कार्य में बड़े २ दिग्गज विद्वान् असफल रहे। उसमें आपको सफलता मिलेगी यह आशा दुराशा है। फिर भी हम आपको पौराणिक विधि से यहां पर कोयरी, काछी, मुरावों की वर्णव्यवस्था दिखना चाहते हैं।

जे० पी०—हम सनातन धर्म का पक्ष लेकर चलना चाहते हैं सनातन धर्म के अनुसार जबतक किसी जाति विशेष की उत्पत्ति न बतलाई जाय, तबतक, उस जाति विशेष को ब्राह्मण क्षत्रियादि कहने का हक किसी को नहीं है कोयरी काछी, मुराव को शूद्र या वैश्य कदापि नहीं कह सकते, जबतक यह न बतलाया जाय कि अमुक वैश्य या शूद्र से इनका वंश चला, एक ही नियम सबके साथ लगाना न्याय है। परन्तु एकको उसके कर्म से शूद्र ठहराना, और दूसरे को उत्पत्ति से उत्तम ठहराना, चाहे उसका कर्म कितना ही नीच हो कदापि न्याय संगत नहीं है।

खण्डन—आप सनातन धर्म का पक्ष लेकर चलना चाहते हैं यह सनातन धर्म का अहोभाग्य है। सनातन धर्म एक प्रभावशाली धर्म है, इसको सडातन आप आर्य समाजियों ने ही किया। और अपनी शक्ति भर कोई युक्ति उठा भी नहीं रखते हैं कभी जाति लुप्त करते हैं, कभी मन्दिरों को तुड़वाते हैं, कभी श्राद्ध नष्ट करते हैं जहां तक बनता चलता है इस सनातन धर्म के किले पर आक्रमण करने से बाज नहीं आते हैं। इस समय भी जो सनातन धर्म का पक्ष ले रहे हैं सो भी अपने मतलब से, सनातन धर्मशास्त्र किसी का अपकार नहीं करता अथवा न अपना नियम ही बदलता है। वह सभी को जन्मसंस्कारों से द्विज और उनसे रहितों को शूद्र कहता है किसी को कर्म से और किसी को जन्म से इस तरह जातीय व्यवस्था किसी धर्म शास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं है जो आज शूद्र हैं अथवा वैश्य हैं उनके जन्म, व कर्म दोनों ही कारण हैं एक नहीं, हम भी मानते हैं कि जन्म कर्म इन दोनों में एक से वर्णव्यवस्था करना कदापि न्याय संगत नहीं है। रही बात यह बताने की कि अमुक वैश्य या शूद्र से अमुक का जन्म है सो इस विषय में प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, सभी अपनी तीन पींढ़ी तक जानते ही हैं बाकी पीढ़ी के लिये जैसे रेल की दो रेखायें आगे जाकर मिली सी मालूम होती हैं किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव इस ज्ञान का बाधक होता है ठीक इसी तरीके से सभी सजातीय जन्म वर्तमान से ही भूत भविष्य का भी समझा जाता है। इसमें सन्देह ही क्या? कर्म का नीच सदा नीच ही समझा जाता है। किसी को कोई शूद्र ठहरा सकता है किन्तु अन्य धर्म का, अन्य जाति का आदमी खुद अपने को अन्य जाति नहीं समझ सकता, अथवा न चुपके से उस जाति का कर्म कर सकता है। किसी को कोई जो किसी जाति का कहता हैं सो पहले उससे ही पूछ समझ कर, जैसे कि आपने ही पहले कहा कि जाति तो लोग जाति वालों से पूछकर निश्चय करते हैं। अन्यथा नहीं समझ सकते। फिर आप यहां आकर कहते हैं कि लोग दूसरे को शूद्र जाति ठहराते हैं। देखिये आप आर्यसमाजियों का विरोध सनातन धर्माव-लम्बी से है न कि सनातन सत्य से, फिर आप सच्ची बात पर परदा क्यों डालते हैं।

जे० पी०—आजकल के पंडित कोइरियों काछियों, और मुरावों के शूद्रत्व में निम्न लिखित कारण देते हैं।

(१) कोइरी, काछी लोग हल जोतते हैं, हल जोतना शूद्र का काम है, अतः ये लोग शूद्र हैं।

(२) इनमें विधवाविवाह होता है, आजकल ऊँची जातियों (ब्राह्मण, भूमिहार आदि) में यह नहीं होता, चाहे लड़की मुसलमान क्यों न हो जाय इसलिये ये शूद्र हैं।

(३) इन जातियों में एकगोत्र में विवाह होता है। इससे भी ये शूद्र हैं।

(४) इन जातियों में उपनयन संस्कार का अभाव है इससे सिद्ध है कि ये शूद्र हैं।

(५) यदि ये कछवाहा हैं तो फिर मूल कछवाहों से कैसे पृथक् हुए, और इनका नाम अपने से भिन्न कैसे हो गया।

(६) क्या कछवाहा होने में तुम्हारे पास कोई सबूत है।

खण्डन—इस प्रकार उपरोक्त छः बातें पण्डितों की तरफ से कोयरीयों को शूद्र साबित करने के लिये आपने दी हैं। उपरोक्त सबब किस दर्जे के निष्पक्ष एवं समुचित हैं सो पाठक खुद तर्क कर समझ सकते हैं किन्तु इसपर जो आपत्तियां की जाती हैं सो आप लोग जे० पी० चौधरी की ही बातों में सुनें।

जे० पी०—प्रथम प्रश्न पर विचार—हल जोतना कोई बुरा कर्म नहीं है। हल जोतने मात्र से कोई नीच नहीं कहा जा सकता। जो लोग इसे नीच कर्म समझ रहे हैं उनको न तो देश का ज्ञान है और न वेद शास्त्र का, केवल अन्ध परम्परा के पीछे चलने वाले हैं इन्हें तर्क से कोई मतलब नहीं रहता, ये लोग निकम्मे होते हैं। बुद्धि से लेशमात्र भी काम नहीं लेते। अनेक लोग कह बैठते हैं कि हल चलाने से जीव हिंसा होती है, इसलिये इसे बुरा कहा गया है। परन्तु क्या हल चलाने में ही जीव मरते हैं। कुदाल चलाने, हेगां देने, गाड़ी से

चलने आदि में लाखों जीव नहीं मरते ? फिर आप लोग इन कामों को क्यों करते हैं इस तरह की हिंसा मानकर तो मनुष्यों का जीना कठिन हो जायगा। मोहरों की लूट और कोयलों पर छाप, कोयरी लोग हल जोतते हैं तो क्या ब्राह्मण बचे हैं ? विहार प्रान्त में राजपूत, कहीं २ भूमिहार, कोङ्कणस्थ ब्राह्मण राजपुताना, गढ़वाल आदि के राजपूत आदि जब हल जोतकर शूद्र नहीं बनते तो फिर कोयरिओं के ऊपर ही क्यों सब बुखार उतारा जाता है ? शास्त्र में भी कहीं पर इसे बुरा नहीं कहा गया है। वसिष्ठस्मृति पण्डित भीमसेन सम्पादित में लिखा है—**कामं वा स्वयं कृष्योत्पाद्य तिलान् विक्रीणीरन्। तस्मात् स नस्योताभ्यां साण्डाभ्यां प्राक्प्रातराशात् कर्षी स्यात्॥** ब्राह्मण किसान खेत को जोतकर तिलों को उत्पन्न कर बेचें। इसलिये जिन बैलों को बधिया न किया गया हो, जो नाथे हुए हों। ऐसे अण्ड कोश वाले बैलों से खाने के पहले खेत को जोते "**लाङ्गलं पवीर०**" इत्यादि वेद के मन्त्र इसमें प्रमाण है ॥ यजु०। १२। ७१॥

किन्ही किन्ही स्मृतियों में निषेध भी है परन्तु वे वाक्य उनमें पीछे से मिलाये गये है जबकि भारत के पतन का समय आगया। लोग कृशि कर्म को नीच कर्म समझने लगे। परन्तु वेद में इसके लिये आज्ञा है जो स्मृति वेद विरुद्ध होती है वह कदापि माननीय नहीं हो सकती। ऐसा सम्पूर्ण ऋषियों मुनियों का सिद्धान्त है। इसलिये वेद के आगे सबको शिर झुकाना ही पड़ेगा, वेद में राजा और ब्राह्मण को हल चलाने की आज्ञा है—**यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषा यदस्रा। अभिदस्यु बकुरेण धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय।** (अर्थात् दस्रा अश्विना) दर्शनीय हे राजन् ? तथा दर्शनीय हे मन्त्रिन् ? आप दोनों (वृकेण) हल से, (यवं वपन्ता) जव आदि बोयें, (ईषं दुहन्ता) अन्नों को दूहें, (बकुरेण) बकुर नामक अस्त्र से (दस्युँ अभिधमन्ता) दुष्टों का नाश करें, (एन तीन कर्मों से) (आर्याय मानुष्याय) आर्य मनुष्य के

लियें, उरूज्योतिः—बहुत प्रकाश, (चक्रथुः) कर रहे हैं। इसलिये आप दोनों प्रशंसित हैं। कोई कह बैठे कि यहां अश्विनौ, पद से देवता का ग्रहण है राजा और मन्त्री का नहीं है तो सो सुनिये—निरुक्त में इसी मन्त्र पर लिखा है कि "**तत्कावश्विनौ ? द्यावापृथिव्यावित्येके, अहोरात्रावित्येके, सूर्याचन्द्रमसावित्येके, राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः।**" अर्थ—अश्वी कौन हैं ? उत्तर द्यावा पृथिवी दिन रात, सूर्य चन्द्रमा, पुण्यवान् राजा मन्त्री इन दोनों का नाम भी अश्विनौ है यदि देवता मानाजाय तो भी ठीक है जब देवता लोग हल जोतते हैं। तो मनुष्य क्यों न जोतेगा ?

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः।
तावामद्य सुमतीभिः शुभस्पती अश्विना प्रस्तुवीमहि॥

ऋ० ८। २२। ६॥

(दिवि)—द्युलोक में (मनुष्य के सुख के लिये जैसे सूर्य चन्द्र कार्य कर रहे हैं उसी प्रकार आप दोनों राजा मन्त्री (मनवे) मनुष्य के लिये, (पूर्व्यं) नवीन वस्तु, (दशस्यन्ता) देते हुए, (यवं) सब प्रकारके धान्य, (वृकेण) हल से, (कर्षथ) उत्पन्न करते हैं, (इसलिये) (अश्विनौ) हे राजन्! हे मन्त्रिन्, (अद्य) आज, (शुभस्पती) जल के रक्षक, (ता वां) आप दोनों को, (सुमतीभिः प्रस्तुवीमहि) स्तोत्रों से हम लोग स्तुति करते हैं।

वेद में मनुष्य के ये दो नाम हैं "**कृष्टि, चर्षणि**" कृष विलेखने धातु से ये दोनों शब्द बने हैं। कृष का अर्थ जोतना है। इसीलिये आजकल किसान के नाम कर्षक, चर्षणि इत्यादि हैं। जब मनुष्य मात्र के नाम (निघन्टु) २। ३। कृष्टि, चर्षणि (खेत जोतने वाला) है तो क्या राजा और ब्राह्मण मनुष्म में नहीं हैं ?

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु।

ऋ० ४। ५७। ४॥

(इन्द्रः)—राजा (सीतां निगृहणातु)—हल को पकड़े, और (ताअनु)—पीछे उस सीता को अर्थात् हल सम्बन्धी खेती क्रिया को (पूषा)—मन्त्री, (नियच्छतु)—नियम

में चलावें। (उत्तरां उत्तरां समां)—प्रत्येक आगामी वर्ष में इस प्रकार (सा पयस्विनी दुहात्)—वह दूध देने वाली होवे।

यदि कोई कहे कि इन्द्र नाम तो देवों के राजा का है, तो सुनिये—"**विद्वांसोहि देवाः**" विद्वान् मनुष्य भी देवता कहलाते हैं। ऐसे ऐसे स्थानों पर इन्द्र पद से राजेन्द्र लिया जाता है। परन्तु जिसके पक्ष में इन्द्र का अर्थ देवराज ही है उस पक्ष में भी कोई क्षति नहीं। जब देवराज को हल चलाने की अनुमति वेद में है तो मनुष्यों के राजा की क्या गिनती? इससे तो और खेती की प्रशंसा होती है।

युनक्तु सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।

हे विद्वानो—(सीरा युनक्तु) हलों को बैल से युक्त करो (युगा वितनुध्वम्) युगों का विस्तार करो, (कृते)—हल से तैयार खेत में बीज बोओ। इनके सिवाय ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल का ५७ सूक्त सम्पूर्ण कृषि कर्म के विषय में है। विस्तारभय से उन्हें हम यहां नहीं देते।

खेती का काम जब से मूर्खों के हाथ गया तब से देश की दुर्दशा शुरू हुई। मूर्ख लोग मिथ्याचारी विद्वान बन बैठे। आजकल अमेरिका आदि देशों में खेती का काम विद्वानों के हाथ है, ब्राह्मण लोग दिन भर कुदाल चलाना आदि खेती के काम करेंगे। किन्तु अपने हाथ से हल नहीं चलावेंगे। इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है। अपने क्रिया कर्म के साथ हल जोतने में कोई दोष नहीं है।

अनेक मूर्ख लोग कहा करते हैं कि जनेऊ पहन कर हल कैसे जोता जायगा? यह विचार आज का नहीं है किन्तु सहस्रो वर्ष पूर्व का है। जब कि वेद विद्या का ह्रास होने लग गया था। यही कारण है आज हल जोतने वाले जनेऊ नहीं पहनते। जब आपत्ति वश हल चलाना पड़ा तब जनेऊ उतार कर रख दिया। अस्तु! उनसे कहना चाहिये कि भाई! जब जनेऊ पहन कर कुदाल

चलाते ही हो, खुर्पी से खेत निराते ही हो, शिर पर खात ढोते ही हो तो हल जोतने में कौनसा पाप समझ रखा है। हां, अलबत्ता व्यसनों से जनेऊ का महत्त्व चला जायगा। उसे तो लोग सारे बाजार करते ही हैं। और हल जोतने के नाम से ही उनकी नाक कटजाती है। अस्तु! अब हल जोतने का विषय हल होगया जो हल जोतने को नीच कर्म कहने का साहस करते हैं वे पहले उक्त प्रमाणों का खण्डन करें।

खण्डन—ब्राह्मणों को भी राजा और मन्त्री के साथ हल जोतना चाहिये, यह आपकी व्यवस्था है। पाठकों को चाहिये कि निष्पक्ष-भाव से इस व्यवस्था पर विचार करें, क्योंकि हल जोतने का जो निषेध है, उसे द्विजातिगण बड़ी कठिनाई में पड़कर निवाह रहे हैं। कोई इसे नीच कर्म समझ कर नहीं त्यागा है बल्कि स्मार्त आज्ञाओं के सामने शिर झुका कर ही। अतएव हल जोतने वालों को मूर्ख कहना, इससे ऐसे कहने वाले की भी विद्वत्ता सिद्ध नहीं होती है। हल जोतने में अगर हिंसाजन्य पाप है तो वह पाप अन्न खाने वालों को भी उसी तरह लगेगा जैसे खटिक से मारे गये पशुओं का मांस खाने वालों को भी हिंसा का पाप लगता है फिर हिंसाजन्य पाप से पृथक् रहने के लिये हल नहीं जोतते यह कहना भी अदूरदर्शिता है। मनुने घातकों की परिभाषा इस तरह की है—
"**अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्त्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥**" अर्थात् अनुमति देने वाला, रोकने वाला, मारने वाला, खरीदने बेचने वाला, सिझाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला ये सब घातक हैं। कहिये क्या इस परिभाषा से हिंसा के पाप से मालिक बन कर खाने वाले बरी हो सकते है? फिर पाप के भय से हल नहीं जोतते यह कहना निर्मूल है। गृहस्थों के हाथ से हिंसा तो अनिवार्य बताई गई है—
पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः। कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥ म० अ० ३। श्लो० ६८॥ गृहस्थ के लिये ये पांच हिंसा-स्थान नियत हैं चूल्ही, जात चक्की, झाड़, उखल मुसल, जलपूर्ण

कुम्भ रखने का स्थान, इन सबको काम में लाकर. पाप में बँधते हैं। "तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः। पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥" अर्थात् उन सब पापों के प्रतिकार के लिये मुनियों ने गृहस्थों को पांच महायज्ञ फ़रमाये हैं। वे यज्ञ कौन हैं— "अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्। पञ्चैतान् यो महायज्ञान् नहापयति शक्तितः। स गृहेऽपि वसन् नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ २। ७०। ७१॥" इस प्रकार निज जीवन के लिये जो अनिवार्य हिंसायें होतीं हैं उनका पञ्चयज्ञ समाधान दिया गया है, देखिये गृहस्थों की तारीफ़—यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वे जन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७॥ यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमोगृही ॥ ७८॥ स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता। सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७९॥ यह तारीफ़ इसीलिये है कि गृहस्थ लोग अन्न उपजाते हैं और सभी को पालते हैं। उन पर अगर हल कुदाल चलाने का पाप आवेगा तो वह संसार को जीवनदान देने से कूपखनन न्याय से दूर हो जायगा। कोयरी वगैरह शूद्र लोग हल जोतते हैं किन्तु ब्राह्मण नहीं जोतते इसका सबब क्या ? अगर ऐसा प्रश्न हो तो सर्व प्रथम आपकी बात—"किन्हीं किन्हीं स्मृतियों में निषेध भी है" जैसे कि आपधर्म में भी मनुजी लिखते हैं—उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद् भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद् वैश्यस्य जीविकाम्॥ १०॥ ८२॥ वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा। हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८३॥ कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता। भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयो मुखम् ॥ ८४॥ इन तीनों श्लोकों का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण क्षत्रिय अगर अपनी जीविका से न जी सकें तथापि खेती नहीं करें, क्योंकि कृषिकर्म

हिंसाप्रधान हैं। इस हालत में चाहे बिहार के या पञ्जाब के, चाहे ब्राह्मण या क्षत्रिय जो हल जोतते वे शूद्र नहीं तो शूद्रवत् हैं। शूद्र और शूद्रवत् इन दोनों शब्दों की शक्ति आप जानते ही हैं। कोयरीओं पर सब बुखार क्यों उतारा जायगा ? बुखार अगर उतारे उतरता तो किसी को बुखार सताता ही क्यों ? जैसे श्रुत्यर्थ विपरीता स्मृति मान्य नहीं वैसे " **मन्वर्थं विपरीता या सा-स्मृतिर्नैव शस्यते** " अर्थात् मन्वर्थ विपरीता स्मृति भी प्रमाणित नहीं है। इस स्थिति में वसिष्ठस्मृति में अगर लिखा है कि तिल पैदाकर बेचें और हल जोतें तो प्रथम तो यहां कोई कर्तृपद नहीं जिससे कि समझा जाय कि कौन जोते ? दूसरी बात मनुजी ने लिखा है कि — **काममुत्पाद्य कृष्यांतु स्वयं-मेव कृषीबलः। विक्रीणीत तिलान् शूद्रो धर्मार्थमचिरस्थितान्॥९०॥** यहां पर किसान शूद्र तिल निपजा कर बेचें सो भी धार्मिक कार्य के लिये, इससे शूद्र को ही अधिकार सिद्ध है।

अब आपका वैदिक प्रमाण देखना चाहिये—आप कहते हैं कि वेद में राजा और ब्राह्मण को हल चलाने की आज्ञा है—" **यवं वृकेणाश्विनौ** " इत्यादि मन्त्र प्रमाण हैं आपने तीन मन्त्र दिये हैं। इन तीनों मन्त्रों में दो मंत्रों में "अश्विनों" यह पद है। इस पद का निरुक्त आप ही लिखते हैं कि 'अश्विनौ' अर्थात् 'द्यावापृथिवी' 'दिन रात' 'सूर्य चन्द्रमा' ये तीन अर्थ बिना किसी के नाम लिये ही कहे गये हैं; किन्तु दो राजा या दो पुण्यात्मा यह अर्थ ऐतिहासिकों के नाम से दिये गये हैं। ऐतिहासिक कोई शब्द शक्ति नियामक नहीं है अतएव अश्विनौ इस पद का अर्थ चाहे द्यावापृथिवी, चाहे सूर्य चन्द्रमा, चाहे दिनरात कर सकते हैं अर्थात् देवता प्रधान अर्थ होना चाहिये, किन्तु मनुष्य प्रधान नहीं; इसमें प्रमाण यह है कि **ऋग्वेदो देव दैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः। सामवेदः स्मृतः पित्र्यः यस्मात्तस्या शुचिर्ध्वनिः॥४।१२४॥ एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयी निष्कर्ष मन्वहम्। क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयत॥१२५॥** अर्थात ऋगवेद देवदेवताक है। यजुर्वेद मनुष्यदेवताक

है, क्योंकि इसमें मानव इति कर्तव्यों का उपदेश है। सामवेद पितृदेवताक है, क्योंकि इसमें पितृकर्म का वर्णन है। इस नियमानुसार ऋग्वेद में देव देवताक ही मन्त्र होना चाहिये। जिस मन्त्र में—**आर्याय मानुषाय उरुज्योतिश्चक्रथुः**। आर्य मनुष्यों के लिये बहुत प्रकाश कर रहे हैं, ऐसा वर्णन है उस मन्त्र में सम्बोध्य देव ही हो सकते हैं क्योंकि 'आर्याय मानुषाय' इस चतुर्थ्यन्त पद से राजा, ब्राह्मण, मन्त्री सब ही लिये जाते हैं। जिनी के लिये बहुत प्रकाश किया जाता है वे स्वयं कर्ता कैसे होंगे? यही स्थिति है दूसरे मन्त्र की और तीसरे मन्त्र की भी।

आर्यसमाजियों के वेदार्थ दयानन्द सरस्वती के भाष्य पर सीमित हैं। दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका नामक ग्रन्थ पढ़ने से महीधरादिक वेदभाष्यकर्ता तो अनाप्त ही ठहरते हैं। आप आर्यसमाजी लोग सभी विधि निषेधों को वेद ही से सिद्ध करते हैं किन्तु तनिक भी ध्यान नहीं देते कि—**वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥ २। ६॥** सब वेद और वेदज्ञों की स्मृति व शील और साध्वाचार तथा आत्मतुष्टि ये सब धर्म की जड़ हैं। यहां विचार यह होता है कि विध्यात्मक, अर्थवादात्मक और मन्त्रात्मक ये सब धर्म हैं इनमें अर्थवादात्मक की भी विध्यात्मकों के साथ एक वाक्यता से प्रामाण्य है जैसे कि जैमिनि मुनि ने लिखा है—**विधिनात्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः**। इस प्रकार वेदों के बाद वेदाभिज्ञों की स्मृति व शील धर्ममूल माना गया है। निषेधवाद और विशद जातिवाद, इत्यादि बहुतसी अभीष्ट बातों का वर्णन स्मृतियों से ही मिलता है। तभी तो—**यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयोहि सः॥ २। ७॥ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्व मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥** यहां श्रुति स्मृति दोनों से धर्म निकला है ऐसा स्पष्ट है, साथ ही सदाचार भी

प्रमाण है। चाहे किसी सबब से क्यों न हो द्विजातियों को हल जोतना निषिद्ध है। शूद्रों के लिये विधि है, जिसलिये कि—**एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनुसूयया।** अर्थात् शूद्रों का कर्तव्य है कि त्रैवर्णिकों की सेवा सौम्यभाव से करे। यह कर्तव्य हल जोतने से हल हो जाता है; क्योंकि सभी वर्णों की, सभी आश्रमों की सेवा खेती से है और खेत में हल जोतना ही मुख्य काम है। बाक़ी सहयोग द्विजाति लोग भी देते ही हैं। खेती का काम मूर्खों के हाथ जाने से अगर देश का सत्यानाश आप मानते हैं तो खुद आप पण्डित होकर हल क्यों नहीं जोतते ? असल बात तो यह है कि आपको देशका कोई आवेश नहीं, आप तो चातुर्वर्ण्य की जड़ काटना चाहते हैं ? जनेऊ कांधे पर रखने से क्या होगा जनेऊ की मर्यादा रखनी चाहिये। जनेऊ की मर्यादा दो प्रकार की है—एक आन्तरिक दूसरा बाह्य जिसमें आन्तरिक तो व्यसन निवृत्ति ही है बाह्य मर्यादा हल नहीं जोतना, गौ नहीं दूहना, विधवाविवाह नहीं करना, आदि। इन दोनों मर्यादाओं में किसी एक का नाश करना पर्याय से ज्ञातिध्वंस करना है। हल जोतना जब स्मृतियों में निषिद्ध है और द्विजातियों ने उसे अपनाया है तो वह आज भी निषिद्ध ही रहेगा, जो शूद्रोंने उसे आजतक ग्राह्य माना तो अब भी उनके लिये विधि ही रहेगी।

जे० पी०—दूसरा प्रश्न विधवाविवाह का है, इसका विरोध करने वाले वे लोग हैं जिन्हें देश, काल तथा शास्त्र का पूर्ण ज्ञान नहीं है। यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है इन त्रिगुणों के चलते जब सब प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं तो स्त्रियां क्यों न पाई जायंगी ? काम के आक्रमण से बड़े २ ऋषि महर्षि नहीं बच सकते तो स्त्रियां कैसे बचेंगी, जब पुरुष बूढ़े होकर भी नवीन लड़की से शादी करने को लालायित रहते तो फिर स्त्रियां क्यों वैधव्य पालें। जो लड़कियां आजन्म ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकती हैं उनके लिये पुनर्विवाह की शास्त्र में आज्ञा है, किन्तु पुरानी लकीर पीटने वाले नहीं मानते हैं।

खण्डन — इस विधवाविवाह पर आर्यसमाजियों की तरफ़ से बहुत दिनों से शास्त्रार्थ होता आया है। नियोग और विधवाविवाह की चर्चा स्मृतियों में है किन्तु सिद्धान्त निषेधात्मक ही है जैसे कि—**नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्॥ अ० ६। ६४॥ नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्। न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥ ६५॥ अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः। मनुष्याणामपिप्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति॥ ६६॥ स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा। वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः॥ ६७॥ कामन्तु क्षपयेद्देहं पत्रपुष्पफलासनैः। नतुनामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु॥** इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि विधवाविवाह अकर्तव्य है। जिस विधवा से वैधव्य दुःख नहीं सहा जाता है, उसके लिये कामचार हैं किन्तु उसकी सन्तान शुद्ध द्विजातियों की मर्यादा नहीं पा सकती है समाज में ठग, व्यभिचारी, चोर, भांड, हिजरा, वाराङ्गना, संकर, संकीर्ण संकर आदिकों के लिये तत्तत्स्थान नियत हैं, किन्तु यहां पर यह युक्ति नहीं चल सकती है कि गुणों की विभिन्नता से आचारों की विचित्रता है किन्तु जाति सब एक ही है यह नास्तिकों का प्रलापमात्र है। यहां तो मनुजी की आज्ञा है कि—**सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते। सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्॥** म० अ० ९। श्लो० ४७॥ अर्थात् दायों का विभाग, कन्यादान, ददानि यह संकल्प—वाक्य तीनों एक एक ही बार होते हैं। साफ बात है कि जो विधवा होगई उसका दाता कौन बनेगा किसी को अधिकार ही नहीं है। इस विषय पर विशेष जिन्हें प्रमाण देखना हो वे बड़ोदा में मुद्रित पुनर्विवाह शास्त्रादि विचार नामक निबन्ध पढ़ें। यह कोई दलीलों में दलील है कि विधवायें भ्रूणहत्या करतीं हैं अतएव उन्हें व्याह दो, यह बात तो ऐसी है जैसे कोई कहे कि आजकल जेलों में चोरों की संख्या बढ़गई अब चोरी करना निर्दोष समझा जाय। यह कुतर्क है आपद्धर्म में भी विधवाविवाह विधि नहीं

है । है क्या तो आर्यसमाजियों का मज़हवी सिद्धान्त । विधवाओं का गर्भ गिराना, विवाह करना, वाराङ्गना वनाना यह विधवाओं का उद्धतपना है, अथवा उनके पालकों की नालायकी है अतएव इन बातों की अधिकता से विधवाविवाह शास्त्रीय नहीं बन सकता है । आपने पेज ५१ से ७२ तक में विधवाविवाह का मण्डन और सनातनधर्म का खण्डन किया है लेकिन यहां इस विषय को हम अप्रस्तुत समझते हैं । सिद्धान्त यही है कि जो द्विज–जातीय–समाज इस कलिकाल में भी विधवाविवाह नहीं करते हैं वे सनातनधर्म के उपासक हैं और जो इसके विरुद्ध विधवाविवाह करते हैं वे क्या तो शूद्र है अथवा—**इतोभ्रष्टस्ततो भ्रष्टः** हैं ।

जे० पी०—गोत्रविचार—यह एक विवादग्रस्त विषय है । ऐसा लिखने के बाद आपने इस सन्दर्भ में ७ निष्कर्ष निकाले हैं । १ अधिकांश गोत्र गुरुगोत्र हैं । २ अधिकांश गोत्र बनावटी हैं । ३ ब्राह्मणादि के अनेक गोत्र क्षत्रियों से चले हैं । ४ एक कुल के अनेक कुल भिन्न २ पुरुषों के नाम पर हो जाने से उनमें शादी होती थी गोत्र–दोष नहीं लगता था । ५ आजकल जो क्षत्रियादिकों के वसिष्ठ अत्रि आदि गोत्र हैं वे गुरुगोत्र हैं । ६ आजकल उन्हीं गोत्रों को बचाकर जो शादी होती है वह अन्धपरम्परा है । ७ दशरथ और जनक, श्रीकृष्ण और अर्जुन के वैवाहिक सम्बन्ध से पता चलता है कि मूलपुरुष के एक होते हुए भी कुछ निश्चित पीढ़ी बचाकर उसी एक ही मूलपुरुष के कुल में परस्पर विवाह कर लेते थे ।

ऐसी दशा में मुराव आदि का गुरुगोत्र है कश्यप, परन्तु वे माता की ५ । ७ पीढ़ी तथा पिता की १० । १२ पीढ़ी से भी अधिक बचाकर परस्पर शादी करते हैं । अब हमें कोई बतलावे कि इनमें गोत्रज दोष कैसे आवेगा ?

यादव, बघेल, बुन्देला कई क्षत्रिय लोग अपने २ गोत्र में विवाह करते हैं अतः गोत्र का प्रश्न लेकर जो ब्राह्मणमण्डली आगे बढ़ती है उसे मेरे दिये प्रमाणों का खण्डन करना चाहिये ।

खण्डन—गोत्र का विचार कल्पनामात्र ही होगा, किन्तु यह कल्पित गोत्र आज का नहीं है "एकोगोत्रे" ४।१।६३। इस पाणिनि सूत्रसे एवं गोत्र विषय में वैयाकरणों की विविधसंज्ञा व परिभाषा से सिद्ध है कि गोत्र कल्पना पाणिनि से बहुत प्राचीन हैं। गोत्र की कल्पना हिन्दुत्व का पोषक है। देखिये—याज्ञवल्क्य श्राद्धाध्याय में मिताक्षराकार लिखते हैं—मातुः पिण्डदानादौ गोत्रे विप्रतिपत्तिः, भर्तृगोत्रेण पितृगोत्रेण वा दातव्यमिति ? उभयत्र वचनदर्शनात्, स्वगोत्राद् भ्रश्यतेनारी विवाहात् सप्तमे पदे। स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्यापिण्डोदकक्रिया॥ इत्यादि भर्तृगोत्र विषयं वचनम्।...... पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्य्याद् भर्तृगोत्रतः। जन्मन्येव विपत्तौ च नारीणां पैतृकं कुलम्॥ इत्यादि पितृगोत्र विषयम्। एवं विप्रतिपत्तौ असुरादिविवाहेषु पुत्रिका करणे च पितृगोत्रमेव तत्र तत्र विशेषवचनात्...... तत्रच—येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति। इति वचनाद्वंशपरम्परायात समाचरणेन व्यवस्था। इस उपरोक्त दलील से सिद्ध होता हैं कि गोत्र चाहे कल्पित ही हो किन्तु सप्तपदी के सिवा वह नहीं बदलता, सपिण्ड, सकुल्य, सगोत्र आदि धर्मशास्त्र में भेद कहे गये हैं। इनमें—सपिण्डतातु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने। मनु० अ० ५। ६०। सातवें पुरुष में सपिण्डता छूट जाती है किन्तु समानोदकता तो हमारे कुल में अमुक नाम वाले हुए थे, ऐसा नहीं जानने से जाती है। यही सगोत्रता की बात है। जब किसी गोत्र में पैदा हुआ आदमी अपने गोत्र को भूल जाय इस स्थिति में ही वह उस गोत्र से च्युत हो सकता है। अन्यथा कुलपरम्परा प्राप्त गोत्र उसका कायम ही रहेगा, वह बदल नहीं सकता है। गोत्र अगर नगण्य होता तो—परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरान्तथा। कृत्वातस्याः समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं समाचरेत॥ अर्थात् समानगोत्रा व समानप्रवरा कन्या से विवाह करने पर उसे त्याग देवे

और अतिकृच्छ्र नाम का प्रायश्चित करें ऐसा प्रायश्चित शातातप क्यों फरमाते ? ऐसे ही—**सगोत्रां चेदमत्योपगच्छेन्मातृवदेनां बिभृयात्। प्रजाता चेत्कृच्छ्राब्दपादं चरित्वा यन्म आत्मनो बिन्दाभूः। पुनराग्निश्चक्षुरदादित्येताभ्यां जुहुयात्॥** ऐसा बौधायन लिखते हैं। अगर गोत्र कोई चीज नहीं होता तो यह प्रायश्चित्त क्यों? हम पहले लिख आये हैं—"**गोत्रं चाभिजने कुले**" अर्थात् गोत्र जाति का ही वाचक है सिवाय इसके गोत्र यह संकेत जिस कुल में जो पुरुष मुख्य और मूल हुए हैं उन्हीं के नाम से वह उनका गोत्र कहलाता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनू अखण्डोपाधिक मूलक जाति हैं और गोत्र यह उन्हीं तीनों के सखण्डोपाधि मूलक संकेत है। किन्तु शूद्र नामक चतुर्थ जाति में यह बात नहीं हैं। क्योंकि **चतुर्थः शूद्रस्त्वेकजाति रेव।** शूद्र यह अखण्डोपाधि है अतएव एक ही काश्यप गोत्र भी है। अगर यह गोत्र कल्पना मात्र ही है फिर भी शूद्रों में कल्पना सहकृत ही गोत्र भेद क्यों नहीं ? गोत्र के विषय में विवाद मैंने महाराष्ट्र भाषा में करमणुक नामक पत्र के लेख में पढ़ा था उस विद्वान् लेखक ने सिद्ध किया था कि गोत्र शब्द की व्युत्पत्ति से "**गावस्त्रायते इति गोत्रम्**" अर्थात् गोशाला या बथान अर्थ होता है, इस तरह अत्यन्त प्राचीन समय में जब जिला, थाना, पोष्टाफिस, रजिस्टरी आफिस, सब डिवीजन आदि नियत नहीं थे, तब एक प्रान्त के आदमी दूसरे प्रान्त में जाकर अपना पता गोत्रों से देते थे। ये गोत्र ऋषियों के नाम से प्रख्यात होते थे। जो व्यक्ति जिस गोत्र के नाम से अपना परिचय देता था वह उसी गोत्र का कहलाता था। इस तरह गोत्र भी चल पड़ा, ऐसी ऐसी कल्पनायें उन लोगों की हैं जो शास्त्रीय सिद्धान्त को तिनके के समान अपनी कल्पना रूप झंझावात में उड़ा देते हैं। आज कोई भी जात्यभिमानी आदमी इन बातों को नहीं सुनना चाहेगा, जिन बातों की नींव धर्म शास्त्र में हैं और कुल परम्परा से परिपालित है तथा जिन्हें दुनियां जानती व मानती है उन बातों की जड़ अगर युक्ति तर्क असद्धेतु के बल पर काटी जाती हो। भला यह भी कोई युक्तियों

में युक्ति है कि सभी आदमी ब्रह्मा से पैदा होने के सबब से भाई भाई हैं। अतएव किसी की भिन्न जाति नहीं है। मनु और शतरूपा से सृष्टि का उत्पन्न होना लिखा है। एवं--" **मनोरपत्यं पुमान् मानवः** " इस व्युत्पत्ति से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, यवन सभी मनुकी ही सन्तान हैं किन्तु मनु गोत्र किसी का नहीं है इत्यादि युक्तियां नास्तिकता का द्योतक हैं। दुनियां जानती हैं कि एक ही उपादान से उत्पन्न कार्यों में भेद होता है जैसे कि दूध, इक्षु, गेहूं इन तीनों पदार्थों के संयोग से जो भिन्न २ पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उनकी इयत्ता आजतक नहीं हो सकी। एक ही जल प्रपात से निकली हुई जल धारायें जलाशय के अनेक संज्ञाओं से कहीं जातीं हैं। उन्हीं में से कोई पेय कोई अपेय होती हैं। वृष्टि से गिरे हुए जल जाह्नवी की धारा में पवित्र व धवल होते हैं। और कर्म नाशा में अपेय और अपावन! इस पर अगर कोई सन्देह करे कि जलके उद्भवस्थान समान होने से यह भेद क्यों? तो उसे सिवाय शास्त्र प्रमाण के और क्या सबूत दिया जायगा। यदि कोई अपने शुष्क एवं अप्रतिष्ठित तर्क के बल पर नहीं माने तो इस मर्ज की दवा ही क्या है! हम सनातनी लोग तो उसे उच्छास्त्रवर्ती, अकर्मण्य, नास्तिक ही कहेंगे। क्योंकि मनुजी की ऐसी ही आज्ञा है जैसे कि—**श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तथा स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥ योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥** यहां स्पष्ट कहा जाता है कि सर्वथा तर्क से श्रुति स्मृति का अपमान करना नास्तिक पना है और वह अवमन्ता बहिष्कृत करने योग्य है। चाहे यही समझें कि हम सबों ने सनातन धर्मावलम्बियों को बहिष्कृत किया है क्योंकि वे लोग श्रुति स्मृति उभय प्रमाण मानते हैं और हम सब सिर्फ वेद मानते हैं सो भी मनमानी घरजानो रीति से अर्थ करके मानते हैं। प्राचीन भाष्यों के साथ नहीं, इस प्रकार स्पष्ट कर देने पर संसार को जो समझना होगा, सो समझेगा। आपके लिये तो जाति ही कोई चीज नहीं है

गोत्र को तो पूछता ही कौन ! आप सिद्धान्त समझें कि जाति नित्य है, गोत्र अनादि है। सारी दुनियां इन्हें मानती है, वैवाहिक प्रथा में गोत्राध्याय, प्रवराध्याय मुख्य विधि है। द्विजातियों में सगोत्र विवाह नहीं होता है, और शूद्रों में कल्पनाकृत भी गोत्रभेद नहीं है। आप चाहे आज इस गोत्र भेद को अन्ध परम्परा ही समझें किन्तु संसार तो इस बात को आदर की दृष्टि से ही देखता है। और भविष्य में भी देखेगा। मूल की एकता से अगर सब एक समान देखें तो आप ही कहिये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, यवन ये अभिधान और अभिधेय तैयार कहां से आते। जब ये भेद सिद्ध हैं फिर इस हालत में शूद्र लोग ५। ७ पीढी या १०। १२ पीढी छोड़कर ही शादी करेंगे तथापि सगोत्र विवाह हो ही जाता है। अतएव और संस्कारों की विधि भी शूद्रों के लिये नियत नहीं है। अपेक्षाकृत अपकृष्टता को दूर करने के लिए जाति को नष्ट करना और गोत्र को नहीं मानना एकदम वाहियात बात है।

जे० पी०—उपनयन संस्कार यद्यपि संस्कार का न होना शूद्रत्व का बोधक है परन्तु आजकल के जमाने में जबकि हिन्दुधर्म की अवस्था बिगड़ गई है और आज १५०० सौ वर्षों से विदेशियों के बारबार आक्रमण से जबकि वर्णव्यवस्था बिगड़ गई है केवल उपनयन का नहीं होना शूद्रत्व का बोधक नहीं हो सकता है। यह नियम आपत्काल में लागू नहीं हो सकता है। केवल इसी जाति के विषय में यह नियम लागू करना अन्याय है। क्योंकि साफ देखने में आता है कि वैश्य और राजपूत जाति के बहुत से लोग यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं। अब आर्य समाज की कृपा से यज्ञोपवीत लेने लगे हैं। बहुतों को तो विवाहवेदी पर ही जनेऊ पहनाया जाता है, कई एक को विन्व्यबासिनी देवी को चढ़ाकर जनेऊ पहनाया जाता है। यदि संस्कार हीनता ही शूद्रत्व का साधन है फिर तो वैश्य, क्षत्रिय आदि जो जनेऊ नहीं लेते उन्हें शूद्र क्यों नहीं कहते हैं। अतएव संस्कार के अभाव से कोयरी आदि को शूद्र कहना निर्मूल है। इसके बाद एक राजपूत के यज्ञोपवीत संस्कार में मैथिल ब्राह्मणों की ज्यादती थाना दरभङ्गा, ग्राम

गरवरा का नाम लेकर उदाहरण स्वरूप आपने लिखी है (अगर बात सच्ची है तो तूनाराय के ऊपर अयोध्या चौधरी ने अन्याय किया यह हम स्वीकार करते हैं)

खण्डन—सच्चो बात में एसी शक्ति है कि वादी को भी स्वीकार करना ही पड़ता है। तदनुसार संस्कारहीनता को शूद्रत्व का पोषक आपको भी मानना ही पड़ा, सिर्फ जो आप कह रहे हैं कि अब हिन्दूधर्म की अवस्था बिगड़ गई वैदेशिकों के लगातार १५०० सौ वर्षों के आक्रमणों से वर्णव्यवस्था एकदम बिगड़ गई है अतएव उपनयन का न होना शूद्रत्व सम्पादक नहीं हो सकता। यह आपकी बात अनुभव विरुद्ध एवं प्रमाणों से शून्य है। क्योंकि हिन्दू धर्म की अवस्था अगर कुछ बिगड़ी है तो सो आप लोगों ने ही बिगाड़ी है। और यथा साध्य बिगाड़ना चाहते हैं। धर्म की अवस्था का बाह्य वैभव से कोई सम्बन्ध नहीं है इसका सीधा सम्बन्ध हृदयस्थ श्रद्धा से है। आप लोगों ने इधर विचार स्वातन्त्र्य की महिमा गाकर उधर शास्त्रीय आज्ञा ज्यों के त्यों मानने में गुलामी का भय दिखाकर श्रद्धासरोवर को सुखाने में प्रचण्ड मार्तण्ड का काम किया है। यही धार्मिक अवस्था की खराबी है। इस खराबी की जड़ मजहब और मजहबी आप लोग हैं। अगर त्रिकालदर्शी महर्षिओं की विधि निषेधरूप आज्ञा पालित होती रहती तो भारत को ये दिन नहीं देखने पड़ते। और मजहब प्रवर्तक आप लोगों को यही गुरुकिछी मिली कि "लकीर का फकीर बनना मूर्खता है, इसी तरह किसी की श्रेष्ठता के सबब से आज्ञा माननी गुलामी है। ऐसी २ बातों में भोले भालों को फसा चुके और फसा रहे हैं। यही तो हिन्दू धर्म की अवस्था की बिगड़ी दशा है। इसी तरह वर्णव्यवस्था भी संरक्षित है। आज भी त्रैवर्णिकों के यथासाध्य संस्कार भी होते हैं। जो लोग उपनयन संस्कार त्याग बैठे हैं उन्हें तो सच्छूद्र तक बनने का अधिकार नहीं है और उन्हीं लोगों के दृष्टान्तों से शूद्रों को आप उन्हीं वैश्य राजपूत की कोटि में ले आना चाहते हैं। यह दलील एकदम दुर्बल है। देखिये, व्रात्य प्रायश्चित प्रकरण—येषां द्विजानां सावित्री नानूच्यते यथा विधि।

तांश्चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान् यथा विध्युपनाययेत् ॥ मनु विष्णु-वचनम् ॥ इस पर शूलपाणि लिखते हैं कि यह सुभीता का प्रायश्चित्त माता पितृविहीन और निर्धनजनों के लिये है। अगर आलस्य, प्रमाद, अज्ञान आदि से सावित्रीपात हुआ हो तो इस पर याज्ञवल्क्यजी लिखते है कि—**आषोड-शाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्चवत्सरात्। ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपना-यनिकः परः। अत ऊर्ध्वं भवन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृतेक्रतोः।** अर्थात् १५ वर्षतक ब्राह्मण का, क्षत्रिय और वैश्य का, २१ और २३ वर्षतक अगर यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ हो तो वह व्रात्य है। इसी व्रात्यस्तोमक्रतु का स्वरूप समझाते हुए वसिष्ठजी लिखते हैं—**पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत्।** यह व्रत तीन दिन चार मास में पूरा होता है। दो मास तक यावक पीना पड़ता है। एक मास तक दूध, आधा मास तक आमिक्षा। (गरम दूध में दही मिलाने पर आमिक्षा बनती है) आठ रात तक घी पीना पड़ता है और छः रात बिना मांगे जो मिले उसी पर निबाहे। तीन रात तक जल पर ही रहे, दिन रात भर उपवास करे। इन सबों के अनुकल्प में सवानौ धेनुदान करना पड़ता है। यहां शंख लिखित का वचन है कि व्रात्य प्रायश्चित में गो दान नहीं करना चाहिये किन्तु चान्द्रायण व्रत कर्तव्य है। देश में पर-राष्ट्रादि आक्रमण होने से अगर सावित्री पात हुआ हो तो यमजी फरमाते हैं—**पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च। ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः। प्रायश्चित्तं भवेत्तेषां प्रोवाच वदतां वरः। विवस्वतः सुतः श्रीमान् यतोधर्मार्थ तत्ववित्। सशिखं वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात् समाहितः।** इत्यादि वचनों से प्राप्त प्रायश्चित्त का अनुकल्प में सवा तीन धेनुदान लिखा है। ऐसे ही इसी विषय में व्रात्याधिकार में हारीतजी ने लिखा है—**तेषां प्रायश्चित्तं मासं पयोभक्ष्यं गामनुगच्छेयुश्चीर्णप्रायश्चित्तं विशिष्टव्रतैरुपनयेयुः।** इत्यादि। इस तरह सभी प्रायश्चित ग्रन्थों में सभी स्मृतियों में आये प्रायश्चित्त

कहा गया है। इस उपरोक्त सन्दर्भ से यह कौन कह सकता है कि यह नियम केवल एक ही जाति के विषय में लागू है ? साफ बात है कि जिन द्विजातियों का किसी भी सबब से यज्ञोपवीत संस्कार छूट गया है उन्हें प्रायश्चित्त होने पर ही पुनः संस्कार होगा। इस विषय में व्रात्य संस्कार विधि अच्छी तरह देखिये। यह बात तो है उनकी जिन्हें यज्ञोपवीत संस्कार का अधिकार है। शूद्रों को तो अधिकार है ही नहीं, फिर क्षत्रिय वैश्यों के उदाहरण से शूद्रों को क्या सम्बन्ध ? जिसे जो अधिकार है ही नहीं उसे उस विषय में अधिकता से या न्यूनता से प्रवृत्त होना ही अनधिकार चर्चा है।

अब हम मुख्य बात की तरफ आते हैं। सो बात यह है कि कोयरियों की मौलिक जाति क्या है ? यद्यपि यह सन्देह हम लोगों का नहीं है। हम सब अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभव से जानते हैं कि कोयरी लोग सच्छूद्र हैं। जे० पी० चौधरी इसके विपरीत मानते हैं। आपकी बातें आपके ही शब्दों में सुने ?

जे० पी०—ऊपर के प्रमाणों से यह दिखला दिया गया कि पुनर्विवाह हलकर्षण, उपनयनहीनता तथा एकगोत्र में विवाह इन कर्मों से कोयरी, काछी, मुराव तथा कछवाहे शूद्र नहीं है। आजकल शास्त्रानभिज्ञ ब्राह्मण नामधारी चाहे कितना ही बकबक करें परन्तु उक्त प्रमाणों को खण्डन करना टेढ़ी खीर है। पौराणिक हुए भी जो लोग कर्म से इन्हे शूद्र कहते थे उनका निराकरण तो होगया। अब हमें इनकी उत्पत्ति की ओर चलना चाहिये। और देखना चाहिये कि ये लोग असल में कहां से निकले हैं ? इनका मूल वंश क्या है ? ये पौराणिक पद्धति से किस वर्ण में हैं। पुराण इतिहास इनके विषय में क्या कहते हैं। विद्वानों ने इनके विषय में क्या लिखा है ? इनका नाम कोइरी, काछी, मुराव कैसे पड़गया ? इत्यादि अनेक विषय अनुसन्धानीय हैं।

खण्डन—पुनर्विवाह को मनु महाराज ने पशु धर्म कहा है। अतएव इस काम को करने वाला शूद्र ही है, हल कर्षण में द्विज जाति के लिये प्रायश्चित

कहा गया है जैसे कि—**हलैर्वा शकटैर्चापि योजयेद्यो वृषं स्वयम् । प्रजापत्यद्वयं कुर्यात् द्विगुणं योषितां गवाम् ॥** यह गोभिलमुनि का वचन है, लौकिक मर्यादा से यह प्रायश्चित्त होता आया है। गोभिलमुनि के वेदज्ञान के आगे दयानन्द सरस्वती का या उनके अनुयायियों का वेदज्ञान कुछ भी नहीं गिना जायगा, इसलिए द्विजातियों को हल कर्षण स्वयं करना चाहिये। इस विषय में आप लोगों का वैदिक प्रमाण देना धर्मशास्त्र की अनभिज्ञता है। उपरोक्त वचन में गोभिलमुनि स्पष्ट कहते है कि हलों में अथवा गाड़ी में बैलको स्वयं जोतने वाला द्विज दो प्रजापत्यव्रत करे अगर गौ को जोते तो ४ प्राजापत्य-व्रत करना चाहिये। हमारे जानते इस वचन का आदर इस विषम कलिकाल में भी हो रहा है, जो कोई उच्छृंखल विचार वाला द्विज इस वचन को नहीं मान-कर हल जोतता है वह प्रत्यवायी है। अतः उससे सहयोग कथमपि नहीं करना चाहिये, विशेषतया उस व्यक्ति को हास्यास्पद समझना चाहिये जो व्यक्ति स्वयं हल जोतने वाले उच्छृंखल द्विजों के उदाहरणों से सिद्ध करता है कि सभी द्विजातियों को हलकर्षण करना चाहिये। उपनयन हीनता से व्रात्यदोष आता है, परन्तु यह बात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों के लिये है, न कि शूद्रों के लिये जैसे कि हम पहले लिख आये हैं—**द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्य व्रतांस्तु यान् । तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥** शूद्रों के लिये उपनयन संस्कार विधि किसी भी धर्मशास्त्र में नहीं लिखी, उलटे निषेध सिद्ध है जैसे कि चाण्डाल स्पर्श के प्रायश्चित्त में आपस्तम्ब लिखते हैं **चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् । व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते । पञ्चगव्यं न दातव्यं तस्य मन्त्रविवर्जनात् ॥ ख्यापयित्वा द्विजानां तु शूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥** अर्थात् चाण्डालस्पर्श में चतुर्थवर्ण शूद्र को क्या प्रायश्चित्त देना चाहिये ? शूद्र के लिये न, व्रत है न तपस्या हैं, अथवा न हवन है, मन्त्राधिकार नहीं होने से न पञ्चगव्य देना चाहिये । फिर करे क्या कि, अपना पाप ब्राह्मणों से कहकर दान देकर शुद्ध हो।

यहा "व्रतं नास्ति" इस अंश से सावित्री व्रत का निषेध स्पष्ट है, इसी तरह सगोत्रा स्त्री से विवाह होजाने पर द्विजातियों के लिये प्रायश्चित्त है और उस स्त्री का त्याग व आजन्म भरण पोषण का भार लेना धर्म शास्त्र की व्यवस्था है शूद्र के लिये छूट है। इस स्थिति में कौन एसा विद्वान है जो पुनर्विवाह, हल-कर्षण, उपनयनं का अभाव एवं सगोत्र में विवाह, गोदोहन, बाछा वधिया आदि कर्मों से कोयरी, काछी, मुराव आदि को शूद्र नहीं कहे? इस विषय को धर्म शास्त्र से समझने या समझाने वाले बकबक करने वाले हैं एवं शास्त्रानभिज्ञ हैं या नामधारी ब्राह्मण हैं इसका निश्चय तो जनता कर लेगी सिर्फ आपके एसा कहने से कुछ सम्हलता या बिगडता नहीं है आप भले ही अपने मन से पौरा-णिकों का निराकरण उपरोक्त दलीलों से समझें लेकिन परीक्षक इस बात की परीक्षा करेंगे कि आपने निराकरण किया अथवा खुद निराकृत हुए हैं। अब आपकी इन बातों को और देखना है कि—ये लोग असल में कहां से निकले है? इनका मूल वंश क्या है? पौराणिक पद्धति से किस वर्ण में है? इनका नाम कोयरी, काछी, मुराव कैसे पड़गया? इन बातों के विचार में आपने पादरी शेरिंगसाहब बहादुर की लिखी हुई— हिन्दू ट्राइब कास्ट नामक किताब का उदाहरण दिया है।

जैसे कि आप लिखते हैं—बहुत से कृषिकार जातियों के राजपूत नाम है। जो नाम उनके कुछ शाखाओं से मिला हुआ है। और ये लोग राजपूत के तुल्य हैं। और कुछ लोग इन्हीं से निकले हुए हैं। जैसे कोयरी लोगों में कछवाहा है। इसी प्रकार काछी लोगों में भी हैं। कछवाहा एक प्रसिद्ध बलवान् राजपूत वंश है।

खण्डन—-जिन्हे परमात्मा ने समझने की शक्ति दी है, वे उपरोक्त पादरी साहब की बातों पर विचार करें। देखें कि पादरी साहब क्या कहते हैं—यही न कि—बहुत से कृषिकार जातियों के राजपूत नाम हैं। ठीक तो है जो कृषिकार

जातीय हैं, उनका नाम राजपूत के समान है क्या कोई कह सकता है कि ये भी राजपूत ही हैं ? अगर यही बात होती तो फिर साहब बहादुर ने यह क्यों लिखा कि–ये लोग राजपूत के तुल्य हैं कौन नहीं समझता है कि दो भिन्न वस्तुओं में ही तुल्य पद का प्रयोग होता है। अगर कोयरी व राजपूत एक ही हैं फिर तुल्य पद प्रयोग क्यों ? इसी से सिद्ध होता है कि कोयरी लोग राजपूत नहीं है। अब रही बात खांपों के समान नामों की, सो यह तो सीधी बात है कि भारतीय त्रैवर्णिकों के उपनाम रजिस्टर्ड नहीं हैं। चाहे सो अपने नाम के आगे जोड़ता आया है। जैसे कि मिथिला का प्रसिद्ध ओझा ब्राह्मणों का 'ओझा' यह उपनाम झाडफूंक करने वाले भी अपने नाम के आगे लगाते हैं। विद्वान् ब्राह्मणों की पण्डित पदवी मिथिला के कुम्भकार लोग अपनाये बैठे हैं। क्या कोई इससे कुम्भकार को भी ब्राह्मण समझने का साहस करेगा ? इस तरह की उपनामों की समानता पर तो कोइरी लोग मैथिल ब्राह्मण बनने का दावा भी कर सकते हैं क्योंकि बहुतों का उपनाम महतों है। और मिथिला में अपने भृत्यों का स्वामी महतो कहाता है। सुनते हैं कुछ ब्राह्मणों का महतो मण्डर भी उपनाम है। दूसरी बात राजपूताने में राजपूतों के उपनाम बाउरी, वामी आदि अस्पृश्य जातियों में भी मिलते हैं तो क्या बाउरी, वामी आदि भी राजपूत बनेंगे ? यह निर्मूल दलील है। ऐसे २ दलीलों को लेकर वाद करना वितण्डावाद कहाता है, अब क्रुक साहब बहादुर की बात सुनिये—

मुराव नाम मूलजड़–हिन्दी मूरी से निकला है। मुराव लोग कोयरी, काछी के समान हैं। खेती व बागवानी करते हैं। इन लोगों का रहन सहन एक ही है। जातीय गणना में ये ९ अन्तर्गत जातियों में विभक्त किये गये हैं। वे नवो नाम ये हैं। १ भदौरिया, यह एक परगने के नाम पर उपनाम बना है। २ भक्षा, भक्ष्य भक्षण करने से। ३ हरदिया–हल्दी बोने के कारण से। ४ काछी। ५ कछवाहा–राजपूत के उपनाम से। ६ कन्नौजिया–कन्नौज के नाम से। ७

सक्सेना—कसबे के नाम से। ८ सकठा—शक्ति की पूजा से। ९ ठकुरिया—ठाकुर इस उपनाम से।

इन खापों के विवरण से सिवाय शूद्र के और कुछ सिद्ध नहीं होता है। मूली उपजाना, बागवानी करना, भक्त बनना, हल्दी उपजाना और बेचना, कसबों के नाम से उपनाम रखना, इनमें एक भी काम द्विजत्व साधक नहीं है। अतः इस पर विशेष विचार व्यर्थ है।

जे० पी०—" कोइरी, कोयरी कुरी कुइरी " यू० पी० के पश्चिमी जिलों में एक कोरी जाति है जो कपड़ा बुनती है, कोयरी लोग इनसे भिन्न है। यू० पी० के पूर्वीय जिलों में तथा बिहार प्रान्त में कोयरिओं की संख्या अधिक है। इधर उन्हीं कोरियों को जो कपड़ा बुनते हैं कोली कहा जाता हैं। इसलिये लोगों को कोरी और कोयरी का भेद समझ लेना चाहिये। हमारे पश्चिम के काछी, मुराव आदि भाई इसमें बड़ी गलती कर जाते हैं। इसलिये इस विषय में इतना लिख-देना पड़ा है। कोइरी शब्द की व्युत्पत्ति—वर्तमान काल में यह सम्पूर्ण जाति खेती का काम करती है। वंश परम्परा से इस जाति में खेती का काम होता है। इसी लिये अनेक विद्वान् कृषिकार से कोइरी बना हुआ बताते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। कृषिकार से एकदम कोइरी शब्द बन जाने में कोई प्रमाण नहीं हैं। 'कुइरी' यह संस्कृत शब्द है इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—" कु+ईरी " कुशब्द का अर्थ पृथ्वी है। इरिन—इन्नन्त शब्द है इसका अर्थ है शक्तिमान् अभिमानी, जबर्दस्त। कुना पृथिव्या धनधान्यादिना शक्तिमानिति अर्थात् पृथ्वी के द्वारा जो शक्तिमान बन गया हो उसे कुइरी या कोइरी कहते हैं। इस ईरी शब्द का प्रयोग वेद में देखा जाता है किन्तु संस्कृत भाषा में नहीं। इसी से कालान्तर में कुरी कोइरी आदि प्रचलित नाम पड़गये। आगे आपकी दलील है कि यह कोयरी शब्द अगर वर्ण संकर होता तो इन्हें पुराणों में भी अन्य वर्ण संकर जातियों के समान पाते, सो नहीं पाते हैं। इसलिये कोयरी यह नाम पेशे का ज्ञापक है किन्तु जाति का नहीं;

खण्डन—इस उपरोक्त वर्णन में अपने पक्ष को मजबूत बनाने की एक भी युक्ति नहीं है। उपरोक्त व्युत्पत्ति एकदम अशुद्ध है, क्योंकि कु+ईरी, इस दशा में—**संहितैकपदे नित्या,** इत्यादि नियम से सन्धि अवश्य हो ही जायगी। व्युत्पत्ति से चाहे कुछ भी अर्थ निकले किन्तु उस अर्थ से शताब्दियों का अनुभव नहीं उठाया जा सकता है। हम अन्य प्रान्तों की बात नहीं कहते किन्तु मिथिला में बसने वाले कोयरी भाई उत्तम शूद्र हैं, हिन्दू धर्म शास्त्र को मानते आये हैं। षोडश संस्कारों में यथा विहित संस्कार, शूद्र विधि से श्राद्ध विवाह, तीर्थव्रत, प्रायश्चित्त आदि करते आये हैं। कभी इन्हें न तो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य जूंठ ही खिलाया अथवा न फटा कपड़ा ही पहनाया, आजतक ये कोयरी लोग अपने घरके स्वामी बनकर जातिधर्म की रक्षा करते आये हैं। अब आप लोग आर्यसमाजी मत के ठेकेदार बनकर इन्हें उच्च जाति बनने का लालच देकर और ब्राह्मणों की गलती बताकर एवं जूंठ आदि खिलाने का भय दिखाकर जाति च्युत बनाने की कोशिश करते हैं। देखिये हरएक शूद्र के लिये यह अधिकार नियत नहीं है कि शूद्र कहाने वाला द्विजातियों की सेवा अवश्य करे। यह शूद्रों के लिये अपनी इच्छा पर निर्भर है कि चाहे द्विजातियों की शुश्रुषा करे, अथवा कृषि, शिल्प आदि स्वतन्त्र जीविका करे, इस हालत में यह कहना कि शूद्रों को जूंठा खाना और द्विजातियों की सेवा नियम से कर्तव्य है यह एक तरह से धोखा देना है. इस विषय का तो प्रत्यक्ष अनुभव कोयरी भाइयों को है कि आजतक शूद्र बने रहने पर किस किसने उन्हें जूंठा खिलाया, और अपनी सेवा करवाई, फिर इस तरह प्रपञ्चों का क्या मतलब। हम सबतो कहते हैं कि कोयरी जाति उच्च खानदानी, श्रमजीवी, सदाचारी, सनातनी शूद्र हैं, इस जाति में वर्ण संकरता का दोष नहीं है, अथवा न यह जाति कभी परावलम्बी बनी है। आज जो कोई इस जाति को अपनी सनातन जाति से बाहर करते हैं अगर वास्तव में विचार किया जाय तो वे ही उन लोगों को वर्णसङ्कर बनाते हैं। ये कोयरी लोग जैसे ही आजतक द्विजातियों के पैर धोये जूंठ खाये और वर्तन मांजे

वगैर उच्च दर्जे के शूद्र बनते आये हैं वैसे ही अब भी बने रहेंगे। आज कोई ऐसी राजा की आज्ञा नहीं है कि उन्हें वेकाम करने ही चाहियें। फिर इस तरह कहना सिर्फ कोयरियों को भड़काना है।

इसके बाद आपने कोयरियों को वैश्यों में गिने या क्षत्रियों में ? इस विषय में प्रश्नोत्तर शुरू किया है, उस प्रश्नोत्तर से ही सिद्ध होता है कि पहले तो इन लोगों की जातीय दशा एकदम बिगड़ गई थी अब ये लोग सुधर कर क्षत्रिय बनने का दावा करते हैं, सिर्फ विधवा विवाह के चलन से राजपूत लोग इन्हें निकृष्ट गिनते हैं, और सरकारी रिपोर्ट में भी राजपूतों से इनकी पोज़िशन कम समझी जाती है।

आपके ही वर्णन से कोयरी शूद्र सिद्ध होते हैं सिर्फ पंडित छोटेलाल शर्मा के लेख से कुरुवंश से कोयरी सिद्ध नहीं हो सकते हैं। आप झ्यां से भैरव को धरें यह खुशी आपकी।

जे० पी०—मूल वंश से अलग होने के कारण—वृत्ति अलग होजाने पर १ जाति नियम तोड़ने पर २ पहले आजकल के समान कोई जाति नहीं थी। ज्यों ज्यों लोग आवश्यकतानुसार पेशा विशेष ग्रहण करने लगे त्यों त्यों उनमें जातियां बनने लगीं इत्यादि।

खण्डन—क्यों शास्त्रमर्यादा से बाहर बात करते हैं ? भारतवासी हिन्दू जाति कभी जाति च्युत नहीं रही। जो जाति च्युत होगई वह आजतक उसी रूप में है, किसी भी ऐतिहासिक विद्वानों के लेख से यह बात सिद्ध है कि भारतीय बहुतसी हिन्दू जातियां यवनों की ज्यादती से जाति च्युत बनीं, जो कि प्रान्तवार प्रख्यात हैं। इन कोयरी कुरमियों पर ऐसी एक भी दुर्घटना नहीं घटी इस बात को सभी ऐतिहासिक लोग जानते हैं फिर क्या सबब कि इन कोइरियों को आप उन्ही जाति च्युत में गिने ? आप विश्वास रक्खें कि चातुर्वर्ण्य सिद्ध हैं और उन्हीं चारों वर्णों में कोयरी पवित्र शूद्र हैं।

"चातुर्वर्ण्य—व्यवस्था"

अब यहां पर मैं उस प्रकरण को लिखता हूं जिससे कि चारों वर्णों की सत्ता और इति कर्तव्य सिद्ध हो जावेंगे। मैं अपनी उक्ति में धर्मशास्त्र के वचनों को और युक्तियों को उपस्थित करूँगा, जिन वचनों से एवं युक्तियों से पाठकों को निर्बाध बोध होगा कि ये चारों वर्ण और उनकी वर्णाश्रित इति कर्तव्य सृष्टि आदि से सिद्ध है, और साथ ही यह भी सभी को ज्ञात होगा कि जो जिस वर्ण के लिये नियमित कर्म है, उन कर्मों को त्यागने से उसवर्ण में शिथिलता आती है तथा दुष्ट कर्मों के करने से मनुष्य अपनी जाति से च्युत होता है। एवं अपनी अपेक्षा से उच्च जाति सम्बन्धी कर्मों को करने वाला नीच जातीय पुरुष न उच्च जाति को प्राप्त कर सकता है अथवा न अपने वर्ण में ही स्थिर रह सकता है, उसकी दशा ठीक वैसी ही होती है जैसे कि सूट, बूट, कोट, पेन्ट, कालर, नेकटाई लगाने वाले काले आदमी की दशा होती है अर्थात् न वह हिन्दू रहता है अथवा न गोरा बन सकता है क्योंकि काली भाल पर लाली आती ही नहीं, वह मनुष्य "इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट" बन जाता है, ऐसे ही जो मनुष्य अपने वर्णाश्रित कर्मों को त्यागता है और अप्राप्य जो अन्य वर्णाश्रित कर्म उसे अपनाता है वह मनुष्य अवश्य ही "घरका न घाटका" हो जाता है।

अतः सभी को विश्वास रखना चाहिये कि—"**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**" अपने २ वर्णाश्रित कर्मों पर नियत रहने वाला ही मनुष्य सम्यक् सिद्धि पाता है यह निजैक भक्त पार्थ के प्रति भगवान ने गीता में साफ कहा है। इस उक्ति पर तर्क कुतर्क, युक्ति कुयुक्ति व आलाप प्रलाप समझना चाहिये। जिस बात को आप्तों ने कहा और सारी दुनियां एक मत से आजतक मानती आई। उसका विरोध करना मानो सत्यधर्म का विरोध करना है।

जातियां जन्मान्तर सञ्चित अच्छे बुरे कर्मों के परिणाम हैं किन्तु कल्पित नहीं, यह बात सर्वानुभव सिद्ध है कि शास्त्रकारों का परामर्श उस विषय में विशेष

रीति से चलता है जिसमें कि जिज्ञासुओं को सन्देह हो किन्तु जो विषय सर्वानुभव सिद्ध है उस विषय में परामर्श करना शास्त्रकारों की निगाह में व्यर्थ समझा जाता है। इस विचारानुसार जातियां जनता में सर्वानुभव सिद्ध होने से शास्त्रकारों ने इस विषय में संक्षेप से सूचना मात्र दी है किन्तु विशेष ऊहापोह नहीं किया, फिर भी बुद्धिमानों के लिये तो शास्त्र में पूरा प्रमाण है।

मनु० अ० १२ श्लो० ८।९—**मानसं मानसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्। वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्॥ शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः। वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥** यह जीव मानसिक शुभाशुभ कर्म को मनसे और वाचिक शुभाशुभ कर्मों को वचन से व शरीर सम्बन्धी शुभाशुभ कर्मों को शरीर से भोगता है॥ ८॥ मनुष्य अपने शरीर जन्य कर्म दोषों से स्थावर पने को अर्थात् वृक्ष लतादि योंनि को प्राप्त करता है। वाचिक कर्म दोषों से पक्षि मृग योनि में जाता है और मानसिक कर्म दोषों से चण्डालादि निकृष्ट योनि में जाता है॥ ९॥ इन उपरोक्त दोनों श्लोकों से सिद्ध है कि जीव अपने शुभाशुभ कर्मों से विविध जातियों में उत्पन्न होता है किन्तु ये जातियां कल्पित नहीं है।

निम्नलिखित उपनिषद्वाक्य भी उपरोक्त अर्थ को सिद्ध करता है— (एवमेव खलु) **सौम्याऽन्नेन शुङ्गेनाऽपो मूलमन्विच्छाद्भिस्सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ, सन्मूलाः सौम्येमाः प्रजाः सर्वाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः॥ छान्दोग्य उपनि० प्र० ६ खं० ८। मं० ४॥** अर्थात् हे सौम्य श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी कार्य से जलरूप मूल कारण को तूं जान, ऐसे ही कार्य रूप जल से तेजोरूप मूल कारण को जान और तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान, यही सत्य स्वरूप प्रकृति सब दृश्य जगत् का मूल घर है, और स्थिति का स्थान है। यह सब दृश्य जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश होकर जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन था, अर्थात् इसका अभाव न था।

. . प्रकृति का परिचय देते हुए कहते हैं—**सत्वरजस्तमसां साम्याऽवस्था प्रकृतिः।** अर्थात् सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं।

इस प्रकार प्रकृति का परिचय देकर आगे कहते हैं—**प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राणि, उभयमिन्द्रियं पञ्च-तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः। सांख्य सूत्र अ० १ सू० ६१।** अर्थात् प्रकृति से महत्तत्व बुद्धि और महत्तत्व से अहङ्कार, अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रायें याने सूक्ष्म पञ्चभूत, दश इन्द्रियां व ग्यारवां मन, ऐसे ही पञ्चतन्मात्राओं से स्थूल पञ्चभूत ये चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर, इनमें प्रकृति अविकारिणी, इस प्रकृति का महत्तत्व अहङ्कार, तथा पांच सूक्ष्मभूत कार्य हैं और इन्द्रियां, मन तथा स्थूल भूतों का कारण है। पुरुष न किसी की प्रकृति उपादान कारण है और न किसी का कार्य है।

इस उपरोक्त विवेचन से यह बात सिद्ध है कि जीवात्मा स्वतः सिद्ध है। अनादि संसार प्रवाह में वह अपने संचित शुभाशुभ कर्म के अनुसार ही उत्तम कुल, नीचकुल, दीर्घजीवन, अल्पजीवन, ऐश्वर्य दरिद्रता, सुख दुःख आदि का भागी बनता है, अतः मनुष्यों का कर्तव्य है कि वह अपने कर्मों के अनुसार जाति आयु भोगों का अनुभव करे, किन्तु ऊबकर या चिढ़कर अथवा अपने को नीच समझ कर कर्म की खूबी से मिली हुई जाति को बदलने की चेष्टा नहीं करे, क्योंकि आत्मगत जन्मान्तरोपार्जित कर्म भोगना ही चाहिये ऐसा शूलपाणि ने अपने प्रायश्चित्त ग्रन्थ में साफ कहा है प्रमाण के लिए इस नीचे लिखी बात पर ध्यान दीजिये—जब किसी भी मनुष्य का एक ही विद्वान् रूपवान् पुत्र मरजाता है अथवा व्यापार आदि में अपार सम्पत्ति नष्ट हो जाती है या किसी कुकर्म से भयङ्कर कलङ्क फैल जाता है तब उस मनुष्य को जीवन भारभूत मालूम होता है और मरण सुखप्रद भासित होने लगता है, इस स्थिति में भी पड़कर जो इन्सान प्राण त्याग करता है उसके लिये श्रुति कहती है कि—**अन्धं तमः प्रविशन्ति**

ये वै चात्महनो जनाः। ऐसे ही—**असूर्या नाम ते लोका अन्धेनत मसा वृताः। ते सर्वे प्रेत्य गच्छन्ति ये वै चात्महनोजनाः।** अर्थात् सूर्य रहित अतः अन्धकारमय वे लोक हैं जो आत्म हत्या करने वाले पुरुष हैं वे मरकर उसी अन्धतमिस्रा नाम के लोक में जाते हैं।

आप सोचिये कि इस तरह कठिन आज्ञा श्रुति क्यों देती है ! इसीलिये न कि जिसे एक क्षण के लिये भी अपने निर्धारित जीवन काल से अधिक जीनेकी शक्ति नहीं है वह असमय में मरने का भी अधिकार नहीं रखता है, अगर वह ऐसी अनधिकार चेष्टा करेगा तो मरने पर दुर्गति में पड़ेगा, ठीक ऐसे ही जाति परिवर्तन में भी दोष अवश्य है मनुष्य उत्तम कर्मों को करने में स्वतन्त्र है किन्तु श्रुति स्मृति प्रमाणों से वर्ण विशेष के लिये जो संस्कार नियत हैं उन संस्कारों में परिवर्तन नहीं कर सकता है। ऐसा करने से श्रुति स्मृतियों का विरोध एवं आर्य मर्यादा का विरोध सिद्ध होगा। अतएव निज जाति का अभिमान रखने वालों का कर्तव्य है कि अगर दैव योग से नीच जाति भी मिली हो तथापि उस जाति को संस्कारों का हेर फेर कर बदलने की चेष्टा नहीं करे, किन्तु अहिंसादि साधारण धर्मों से एवं सदाचारों से व सत्संगति से प्रकृति जाति में तरक्की करनी चाहिये, न कि सर्वलोक मान्य मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर मनमानी कर बैठना।

पाठक उपरोक्त निबन्ध में पण्डित जे० पी० चौधरी का पूर्वपक्ष पढ़ आये हैं, जिसमें कि उन्होंने स्पष्टतया लिख दिया है कि मूल की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये चार जातियां तथा इन मूल भूत चार जातियों से निकली हुई, अवान्तर जातियां शास्त्रों में नहीं हैं, इन निर्मूल बातों का खण्डन मैं यथास्थान कर आया हूं। अब यहां पर मैं सुबोध रीति से इन्ही चार वर्णों की सत्ता में प्रमाण पेश करता हूं। हमारे पूर्व पक्षकर्ता पण्डित जे० पी० चौधरी को मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति तो और भी विस्मय में डालती है—उन सब बातों पर भी यहां क्रम से प्रकाश डालूंगा। चारों वर्णों की सत्ता में स्वतः प्रमाण श्रुति कहती है—"**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य**

यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ यजुर्वेद अध्या० ३१ मन्त्र ११ ॥ इस मन्त्र से चारों जातियों की सत्ता सिद्ध है। बात यह विचारणीय है कि विराट् रूप ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई या नहीं ? इस शङ्का का निवारण इसी उपरोक्त मन्त्र का शतपथ ब्राह्मण में अर्थ करते हुए लिखते हैं—"यस्मा-देते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त" इत्यादि अर्थात् जिस लिये ब्राह्मण मुख्य है इसलिये मुख से पैदा किये गये। इस अर्थ से क्या किसी को सन्देह रहता है कि ब्राह्मण की सृष्टि मुख से नहीं हुई ? इस प्रकार ब्रह्म के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति एवं चारों वर्णों की सत्ता वेद से सिद्ध है। स्मार्त सिद्धान्तों से भी इन चारों वर्णों की सत्ता पूर्व सिद्ध की जाचुकी है। कुछ प्रमाण यहां पर भी देता हूं—"न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ मनु० अ० २ । १०३ ॥ अर्थात् जो द्विज प्रातः सन्ध्या व सायं सन्ध्या नहीं करता है उसे सभी द्विज सम्बन्धी कर्म से बाहर कर देना चाहिये। इस श्लोक से द्विज शब्द द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों वर्ण और शूद्रवत् इस पद से शूद्र वर्ण सिद्ध हैं। इतना ही नहीं बलके—"शूद्रवद् बहिष्कार्यः" इस वाक्यांश से सिद्ध है कि शूद्र सदा द्विज कर्मों से बाहर ही रहते हैं तब ही तो बहिष्कार क्रिया में दृष्टान्त रूप से रखा गया है। अगर शूद्रों का भी संस्कार होता तो लिखना चाहिये था कि—"स-शूद्रवत् पुनः संस्कार्यः" अर्थात् वह द्विज शूद्र के समान पुनः संस्कार करने के लायक है किन्तु ऐसा नहीं लिखा गया इससे सिद्ध है कि शूद्र का संस्कार द्विज कर्मों से नहीं होता है। ऐसे ही साक्षि प्रकरण में मनुजी ने लिखा है—

"स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियो दद्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः । शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः" ॥ मनु० अ० १२ ॥ स्त्रियों की साक्षियां स्त्रियां दें और द्विजों की साक्षियां समान द्विज दें। ऐसे ही शूद्रों की गवाही उत्तम शूद्र दे। और चाण्डालों की गवाही चाण्डाल दे। इस श्लोक से चार वर्णों के साथ २ अन्त्यज जातियों की भी सूचना है या नहीं ? इस बात को

विज्ञ पाठक समझेंगे। इस श्लोक से जो एक सिद्धान्त निकलता है उस पर पाठकों का ध्यान खींचना आवश्यक जान पड़ता है। श्लोक में शूद्रों के लिये साक्षी कौन देवे? इस पर लिखते हैं "सन्तः शूद्राः" अर्थात् सत् शूद्र, साक्षी देवें, देखिये यहां पर सत् सज्जन होने पर भी शूद्र ही रहता है अगर ऐसा नहीं होता तो जो शूद्र सत् अर्थात् प्राप्त संस्कार हो गया उसके लिये शूद्र शब्द नहीं लिखा जाता जिस लिये कि "सन्तः शूद्राः" ऐसा लिखा जाता है इस लिये स्वतः सिद्ध होता है कि आन्तरिक बाह्य संस्कार पाकर सज्जन कहाने वाला भी शवस शूद्रत्व जातियुक्त रहता ही है। और भी कहा गया है—"**दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः। सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्**" ॥ मनु० अ० १२ ॥ अर्थात् दण्ड के अभाव में सर्व वर्णों की व्यवस्था दुष्ट हो जावेगी और मर्यादा रूपी से तु-भङ्ग हो जायगा, इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का व आर्य मर्यादा का नाश होने से समस्त संसार क्षुब्ध हो जावेगा। इस श्लोक में विचारने की बात यह है कि अगर जातियां गुण कर्म पर ही टिक कर रहती इनमें जन्म हेतुक स्थिरता रहती ही नहीं फिर "**दुष्येयुः सर्ववर्णाः**" सब जातियां दुष्ट हो जावेंगी, ऐसे ही "**भिद्येरन् सर्वसेतवः**" सब मर्यादायें टूट जावेंगी, इस बात का कोई भय ही नहीं होता क्योंकि मनुष्य अपने गुण कर्मों के अनुसार किसी न किसी जाति में जाता ही, फिर दुष्ट क्या होता? और क्यों होता? अथवा मर्यादा का भङ्ग ही क्यों होता? क्योंकि आपकी मर्यादा तो यही है कि जो ही राजी हो उसी के कन्धे पर जनेऊ देदो जिसने आपके कहने से जनेऊ लिया वह ब्राह्मण नहीं तो क्षत्रिय तो बनेगा ही। जिसने यज्ञोपवीत नहीं लिया वह नियत शूद्र है ही, फिर मर्यादा क्यों नष्ट होगी, और जातियां ही क्यों दुष्ट होगी? यह तो आपको मालूम ही है कि बहुत्व वाच्य में ही बहु वचन होता है तदनुसार यदि ब्राह्मण, क्षत्रियादि चारो वर्ण हैं ही नहीं फिर "**सर्ववर्णाः**" यहां बहु वचन तो शब्दानुशासन से विरुद्ध ही ठहरता, ऐसी उटपटाङ्ग कल्पना विद्वानों के लिये त्रपाकर है। ऐसी कुकल्पना अकर्तव्य है

और भी देखिये—" **अष्टापाद्यंतु शूद्रस्य स्तेयेभवति किल्विषम्। षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य तु। ब्राह्मणस्य चतुः षष्ठिः पूर्णं वापिशतं भवेत्** " ॥ **मनु** ॥ इस श्लोक से चोरी में शूद्रों के लिये आठ और वैश्यों के लिये सोलह, क्षत्रियों के बत्तीस, ब्राह्मणों के लिये चौंसठ, अथवा पूरे सौ दण्ड कहे गये हैं। कहिये अगर चारों वर्ण ही नहीं थे तो दण्ड में ये चार भेद, सो भी एक की अपेक्षा दूसरे को बढ़कर ऐसा क्यों लिखा गया? इससे सिद्ध है कि ये चारों वर्ण सृष्टि की आदि से ही नियत हैं। जिसमें प्रमाण स्वरूप श्रुति, स्मृति, पुराण इतिहास भरा पड़ा है, जिसी स्मृति ग्रन्थ को आप उठाकर आदि से अन्त तक पढ़ जाइये आपको चारो वर्णों का आचार विचार संस्कार सभी कुछ अलग २ मिलेगा। अब यहां पर एक प्रमाण नीति ग्रन्थ का भी देना उचित जान पड़ता है।

कौटिल्य नीति में लिखा है—**प्रकृत्युपवादे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्रान्तावसायिनामपरेण पूर्वस्य त्रिपणोत्तरा दण्डाः** ॥ दूसरा सूत्र है—**पूर्वेणापरस्य द्विपणा धराः**। अर्थात्—यदि चाण्डाल शूद्र की निन्दा करे तो ३ पण, वैश्य की निन्दा करे तो ६ पण, क्षत्रिय की करे तो ९ पण, और ब्राह्मण की करे तो १२ पण दण्ड दिया जाय। इसी प्रकार ब्राह्मण अगर चाण्डाल की निन्दा करे तो २ पण, शूद्र की की करे तो ४ पण, वैश्य की करे तो ६ पण, क्षत्रिय की करे तो ८ पण दण्ड किया जाय। इस प्रकार जाति की उच्चता नीचता पर दण्ड की भी न्यूनता अधिकता बताई गई है। इस प्रकार कौटिल्य ने वर्णव्यवस्था की उच्चता नीचता सर्वत्र शासन व्यवस्था में और सामाजिक व्यवस्था में मानी है। ऐसे प्रमाण सिद्ध व सर्व लोकानुभवसिद्ध वर्णव्यवस्था को आधुनिक आर्यसमाजी विद्वान् चुटकी पर उडाना चाहते हैं किन्तु उनका प्रयास हास्यास्पद ही है। प्रत्येक विधिवाद में मनुष्यों को किस तरह प्रवृत्ति करनी चाहिये? इस पर लिखते हैं—**प्रत्यक्षं लोकदृष्टंश्च शास्त्र**

दृष्टैश्च हेतुभिः । मनु० अ० ८ । ३ अर्थात् शास्त्रों से आदिष्ट और लोकानुभव सिद्ध हेतुओं से विधि निषेध को अपनाना चाहिये । इस वचनानुसार शास्त्रों का प्रमाण संक्षेप से ऊपर लिखा जा चुका है । रही बात लौकिकानुभव की, इस विषय में मैं आर्यसमाजी विद्वानों की बातों से जनेऊ लेने वाले उत्तम शूद्रों से ही पूछता हूं कि क्या आप लोगों को ज्ञात है कि आपके दूरदर्शी सदाचारी पूर्वजों ने भी यज्ञोपवीत संस्कार करवाया था ? अवश्य ही इस प्रश्न पर चुप ही रहना पडेगा, अगर आप सत्य को मान देते हैं तो नहीं, अगर आप लोगों ने आर्य समाजियों से कुकल्पना और यद्वा तद्वा जल्पना सीख ली है तब तो बात दूसरी है, क्योंकि जिज्ञासा की निवृत्ति की जा सकती है, किन्तु दुराग्रह या कदाग्रह की निवृत्ति करना कठिन है । अब यहां पर हमें इस बात पर विचार करना है है कि आर्य समाज के आदि प्रवर्तक श्री दयानन्द सरस्वती वर्ण व्यवस्था पर क्या कहते हैं ? और उनका कथन कहां तक ठीक थे, दयानन्द सरस्वती ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में चौदह समुल्लासों के सिवाय एक अन्तिम प्रकरण स्वमन्तव्या-मन्तव्य प्रकाश नामका रखा है । इस प्रकरण में अपने मान्य सिद्धान्तों को लिख दिये हैं । इसी प्रकरण में आप लिखते हैं—नं० १६—वर्णाश्रम गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं । इस सिद्धान्त का मतलब यह कि वर्णव्यवस्था गुण कर्म को देखकर करता हूं, अर्थात् जिसमें सात्विक गुण हों और आर्यसमाजी सिद्धान्त के अनुसार कर्म करना हो वह जन्म से नीच भी है तथापि उसे द्विज मानता हूं । यह कहना एकदम निस्सार है किसी तरह भी इस बात में सत्यता नहीं दिखती है—कल्पना कीजिये की किसी शूद्र का एक पुत्र है किन्तु वह शौर्य, धैर्य आदि गुण क्षत्रिय के समान रखता है अतएव वह पुत्र तो क्षत्रिय जाति में दाखिल हुआ । इस हालत में पुत्र को पेदा करने वाला शूद्र तो अपुत्र ही मरा ? यह कैसा अन्याय होगा । यह उपरोक्त दृष्टान्त केवल शूद्र ही पर लागू नही होता है किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य पर भी लागू होता है । अगर ब्राह्मण का लड़का गुणकर्म से शूद्र सिद्ध हुआ तो इस हालत

में ब्राह्मण को भी अपुत्र ही मरना पडेगा । यह गुण कर्म की परीक्षा क्या हुई कि संसार व्यवहार में एक भारी उथल पुथल ही मचा डाली । अदूरदर्शी होकर जो व्यवस्थापक बनता है उसकी व्यवस्था ऐसी ही होती है ? अतएव ऐसी ऐसी कुकल्पना श्रवणीय भी नहीं है। इसके अनुसार आचरण करना तो दूर की बात है । जाति के लिये व्यवस्था इस प्रकार है--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार मूल वर्ण हैं, और इन्हीं चारों वर्णों से अनुलोम सङ्कर, प्रतिलोम सङ्कर, सङ्कीर्ण सङ्कर, इन तीनों के सिवाय ब्राह्मणों के नहीं मिलने से क्रियाओं के लोप करने से, तथा अपराध पाकर मुनिओं के शाप से कुछ जाति भ्रष्ट अर्थात् निम्नश्रेणी के नीच वर्ण भी हैं, किन्तु इतना तो सभी को स्वीकार करना पड़ेगा कि जातीय दृष्टि से मूल भूत चार वर्ण अनुलोमादि जाति भ्रष्टादि की अपेक्षा श्रेष्ठ है । क्योंकि इन चातुर्वर्ण्यों की सत्ता सृष्टि की आदि से मानी गई है, अतएव मौलिक शूद्र जाति को त्याग कर केवल बड़े बनने की अभिलाषा से अपनी आत्मा को सङ्करादि दोष से दुष्ट अथवा जाति भ्रष्ट समझना अदूरदर्शिता है । मैं आप लोगों को सुहृद्भाव से कहता हूं कि आप लोकसृष्टि की आदि से चली आती शूद्र जाति को तिलाञ्जलि नहीं दें । शूद्र जाति को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में किसी पुरुषार्थ से वाञ्चित नहीं रहना पड़ता, फिर आप अवैध यज्ञोपवीत संस्कार क्यों कराते हैं ? शूद्रों के लिये यज्ञोपवीत संस्कार का निषेध है, देखिये मनुजी लिखते हैं—" **वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादि द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेहच ॥** अ० २ । यहां पर द्विजन्मा इस पद से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य इन तीन जातियों को ही श्री दयानन्द सरस्वती ने लिया हैं, इससे सिद्ध है कि वैदिक कर्मों के द्वारा शूद्रों का संस्कार नहीं होता है ? देखिये सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय में लिखा है – " **ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णाना मुपनयनं कर्तुम र्हति; राजन्यो द्वयस्य । वैश्यो वैश्यस्यैव । शूद्रमपि कुलसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदिति ॥** अर्थात् ब्राह्मण तीन वर्ण का उपनयन

संस्कार करा सकता है । क्षत्रिय दो वर्ण का, वैश्य सिर्फ वैश्य का उपनयन संस्कार करा सकता है । और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शुद्र हो तो उसको मन्त्र संहिता छोड कर सब शास्त्र पढावे, किन्तु शूद्र का उपनयन संस्कार नहीं करे, इस उपरोक्त प्रमाण को दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास पृ० १२७ में उपरोक्त अर्थ के साथ लिखा है । आज उन्ही के अनुयायी जे० पी० चौधरीजी शूद्रों को जाति भ्रष्ट क्षत्रिय कह कर यज्ञोपवीत संस्कार करा ने के लिये उतारु हुऐ हैं । यह बात वर्णाश्रम धर्म को भारी क्षति पहुचाने वाली है; अतएव ऐसी बातों को सुनना तदनुसार क्रिया करना श्रौत स्मार्त मर्यादा से बाहर होना है। ऐसी अनार्य बातों को चुपचाप देखना अनुचित है । मनु महाराज फरमाते हैं—

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च । हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ जहां पर धर्म अधर्म से और सत्य असत्य से सभ्यों के देखते हुए नष्ट होता है । वहां पर समझना चाहिये कि सत्यता सहित सभ्य नष्ट हैं । अतएव सनातन धर्मोभिमानिओं का कर्तव्य है कि ऐसे अनार्याचरण में अपनी शक्ति भर बाधा पहुंचावें । अगर तत्काल में सफलता न भी मिले तथापि समझना चाहिये कि अपनी भावी पीढ़ी के लिये प्रमाण रहेगा कि इतनी संख्या में शूद्रों ने धर्मशास्त्रों का अनादर कर यज्ञोपवीत धारण किया है । ऐसा समझने पर देश कालानुसार जैसा उचित होगा वैसा व्यवहार इनके साथ किया जायगा, अन्त में हमारा नम्र निवेदन है कि चौरासी लक्ष योनिओं में जरा जन्म मरण, आधि, व्याधि, उपाधि भोगने के बाद पूर्व सञ्चित अपार पुण्य से आर्यावर्तसा पवित्र देश, शुद्ध सनातन स्मार्त धर्म, मूल भूत चातुर्वर्ण्य से एक वर्ण अविकलेन्द्रिय सुन्दर शरीर आदि अपने को अनुपम साधन मिले हैं। अतः अपना कर्तव्य है कि—" **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः** " इस गीता के महार्थवाक्य पर श्रद्धा रखकर अपने वर्णाश्रित कर्मों को अचूक पालन करना चाहिये क्योंकि भगवान् की आज्ञा है—**श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥**

अर्थात् दूसरों के उत्तम धर्मों की अपेक्षा गुण रहित भी स्वधर्म श्रेष्ठ है क्योंकि स्वधर्म में मौत तक श्रेष्ठ है किन्तु पर धर्म भयङ्कर है। देखिये शास्त्र विधि को छोड़ कर मनमानी रीति से उत्तम कार्य भी अकर्तव्य कहा गया है जैसे कि—**यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥** जो मनुष्य शास्त्र कथित विधियों को त्यागकर मनमानी रीति से कार्यों में प्रवृत्त होता है वह मनुष्य न सिद्धि को पाता अथवा न सुखको ही पाता या न पारलौकिक सद्गति को ही पा सकता है। अर्थात् मनमानी आचरण निषिद्ध है। दयानन्द सरस्वतीने वैदिक प्रमाण से केवल ब्राह्मणादि चार जातियां ही नहीं बल्कि अन्त्यजादि जाति भी सिद्ध की है—जैसे कि वे लिखते हैं—**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥** यजुर्वेद २६ वां अध्याय मन्त्र २ इसका दयानन्द सरस्वती अर्थ करते हैं—परमेश्वर कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अति शूद्रादिकों के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है। अब जे० पी० चौधरी ही कहें कि वेद में चातुर्वर्ण्य की तथा अति शूद्रों की सत्ता हैं या नहीं? इस प्रस्ताव में दो ही गति हैं क्या तो चेला जे० पी० चौधरी चूकते हैं जिस लिये वे कहते हैं कि वेदों में व धर्मशास्त्र में चातुर्वर्ण्य की सत्ता है ही नहीं, अथवा वेद में चातुर्वर्ण्य की सत्ता दिखाने वाले गुरु दयानन्द सरस्वती ही चूकते हैं इन दोनों में एक गलती कर रहे हैं इसमें कोई शक ही नहीं। इस मन्त्र से दयानन्द सरस्वती सिद्ध करना चाहते हैं कि शूद्रों को भी वेदाध्ययन का अधिकार है इस बात को चेला जे० पी० चौधरी भी परमोत्साह से मानते ही हैं किन्तु महामान्य महर्षियों के प्रामाणिक बचनों से आपकी यह अभिलाषा बाधित हो जाती है। देखिये सौत्र प्रमाण से शूद्रों को उपनयन संस्कार बाधित है जैसे—"**संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च**"॥ व्यास सूत्र अ० १ पा० ३ सूत्र ३६ अर्थात् संस्कार वेदाध्ययन के लिये है और शूद्रों के लिये वेदाध्ययन का निषेध है। ऐसे ही—"**श्रवणाध्ययनार्थ**

प्रतिषेधात् स्मृतेश्च " शा० अ० १ पा० ३ सू० ३८ अर्थात् वेदार्थ श्रवण अध्ययन का शूद्र के लिये निषेध स्मृति से सिद्ध है। इस प्रकार के वचन सैंकड़ों दिये जासकते हैं इस बात को तो दयानन्द सरस्वती ने भी सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है जैसे कि शताब्दी संस्करण तीसरा समुल्लास पृ० १२७ " **शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके** " सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त हो तो उसको मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढे परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचार्यों का है, यह उपरोक्त अर्थ दयानन्द सरस्वती कृत ही है। लेकिन यह बात तो है चातुर्वर्ण्य की सत्ता मानने के बाद की। यहां तो चारों वर्णों की जड़ ही काटी जाती है। एक दम वंश परम्परा से प्रसिद्ध शूद्रों को उठाकर क्षत्रिय जाति में ही रखते हैं। शूद्र बने रहना भारी भयङ्कर भूल बताते हैं किन्तु धर्मशास्त्र की सम्मति शूद्र के विषय में ऐसी है—**न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति। नाऽस्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम ॥ १२६ ॥ यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः। तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ १२८ ॥ धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः। मन्त्रवर्ज्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ अ० १० । १२७ ॥** अर्थात् द्विजातियों के समान पुनर्विवाहादि जन्य कोई पातक नहीं है, ऐसें ही द्विजातियों के समान संस्कारों के लायक भी नहीं है इसी तरह वेदाध्ययन रूप धर्म में अधिकार भी नहीं है और अहिंसादि साधारण धर्म का निषेध भी नहीं है। ये शूद्र लोग जैसे २ द्विजातियों से द्वेष नहीं करते हुए उत्तम आचरण करते हैं वैसे २ निन्दा रहित होकर इह-लोक परलोक को पाते हैं। धर्म को जानते हुए व धर्म को चाहते हुए सदाचार पर स्थिर रहते हुए शूद्र लोग मन्त्रों के बिना भी दोष- भागी नहीं बनते हैं और अच्छी तरह प्रशंसा को पाते हैं। इन वचनों को देखते यह कहना कि अपनी इच्छा से द्विजातियों ने शूद्रों को नीच, निन्दित बनाया है सर्वथा अप्रामाणिक

और समाज में कलहवर्धक बात है । अतएव कुलाभिमानी व धर्मानुरागी शूद्रों का काम है कि इन आर्यसमाजियों की बात पर बिलकुल ध्यान न दें अथवा न क्षत्रियोचित संस्कार ही करावें । क्योंकि ऐसा करने से " इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः " बन जावेंगे । विचारने की बात है कि यद्यपि मानव समूह की उत्पत्ति एक ही मूल कारण से है फिर भी जिन कारणों से आज सामाजिक भेद हैं उन कारणों में निर्मल ज्ञानरूप अध्यात्म शुद्धि, सदाचार रूप अधिदैव शुद्धि, और रजोवीर्य रूप अधिभूति शुद्धि ये तीन मुख्य हैं । इनमें दो पुरुषार्थ साध्य और अन्तिम पुरुषार्थ से बाह्य है । अर्थात् जन्मान्तरों के संचित शुभ या अशुभ कर्मों के ही अधीन है, जाति व्यवस्था में हमारे दूरदर्शी ऋषियों ने इसी अधिभूति शुद्धि को प्रधान माना है । वर्तमान युग में पुरानी अच्छी से अच्छी प्रथा को लुप्त कर आधुनिक नवीन युगान्तर उत्पन्न करने वाले पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों के मत से नई व्यवस्था करने वाले सुधारक लोग आज चाहे जैसी उच्छृंखलता उत्पन्न करें किन्तु कालान्तर में वे असफल होकर अपने किये पर पछतावेंगे । संसार में आत्माभिमान भी अपना सानी नहीं रखता है । इतिहास के पारगामी मर्मज्ञ लोग जानते हैं कि समाज रचना सर्व प्रथम भारत में ही हुई है । यहां ही से मिश्र, ग्रीस, रोम आदि देशों ने सीखी है । समाज रचना का सर्व प्रथम ग्रन्थ मनुस्मृति है । इसमें समाज शास्त्र के रहस्य सूत्ररूप में सभी मौजूद हैं । हां यह सत्य है कि इसमें समाज रहस्य भी धर्म का ही अङ्ग माना गया है । ग्रीस का पायथागोरस जोकि ईसा से ६ शताब्दी पूर्ववर्ती है, दूसरा ग्रीस का ही तत्वज्ञानी प्लेटो है, उसने समाज रचना पर पूर्ण विचार किया है । प्लेटो का परामर्शपूर्ण 'रिपब्लिक' नाम का ग्रन्थ है । तत्पश्चात् एरिस्टोटल नाम के विद्वान् ने ' पोलिटिक्स ' नाम का ग्रन्थ लिखा है । फिर चीन के ' कनफ्यूशन ने ' व इरान के ' जोरोस्टर ने और फ्रान्स के ' आगस्टकैन्ट ने समाज शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे हैं । जिन ग्रन्थों के नाम ' पाजिटिव्ह फिलासफी ' ' सोशियालाजी ' ' सोशल एकानामी ' इत्यादि हैं । इन सब नवीन प्राचीन ग्रन्थों से चातुर्वर्ण्य सिद्ध हैं । इसमें

सन्देह नहीं कि आज स्वस्वजाति विहित संस्कारों में न्यूनाधिक हो गया है। इस लिये शूद्रों को उठाकर क्षत्रियों में रखना अपनी आत्मा को दण्ड भागी बनाना है जैसे कि—**यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः। तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ मनु० अ० १० । ९६ ॥**

शुभमधिकम् । निबन्धोऽयं समाप्तिमगात् ॥

विनीतः—

श्री दुःखमोचन झा